

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_186417**

UNIVERSAL  
LIBRARY



OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H523/B57A Accession No. GH.1443

Author महाराष्ट्र, रामरत्न ।

Title आकाश की कथा ।

This book should be returned on or before the date last marked below.



सरस्वती-सिरीज़ नं० ४४

# आकाश की कथा

रामरतन भटनागर, एम० ए०



इंडियन प्रेस

प्रयाग

## सरस्वती-सिरीज़

स्थाया परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, प० द्वारिका-प्रसाद मिश्र, सत निहालसिंह, प० लक्ष्मणनारायण गदं, बाबू सपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराङ्कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदमलाल पुत्रालाल बख्शो, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित जेष्ठेश चटर्जी, डा० ईश्वरोप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश-प्रसाद मौलवी काजिल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गापालराम गहमरी, श्री उपेन्द्र-नाथ “अशक्त”, डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश वर्मा, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारा-यण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, प० सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’, प० नन्ददुलारे वाजपेयी, प० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्या-सिंह उपाध्याय ‘हरिभोध’, डा० पीताम्बरदास बड़वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि ।

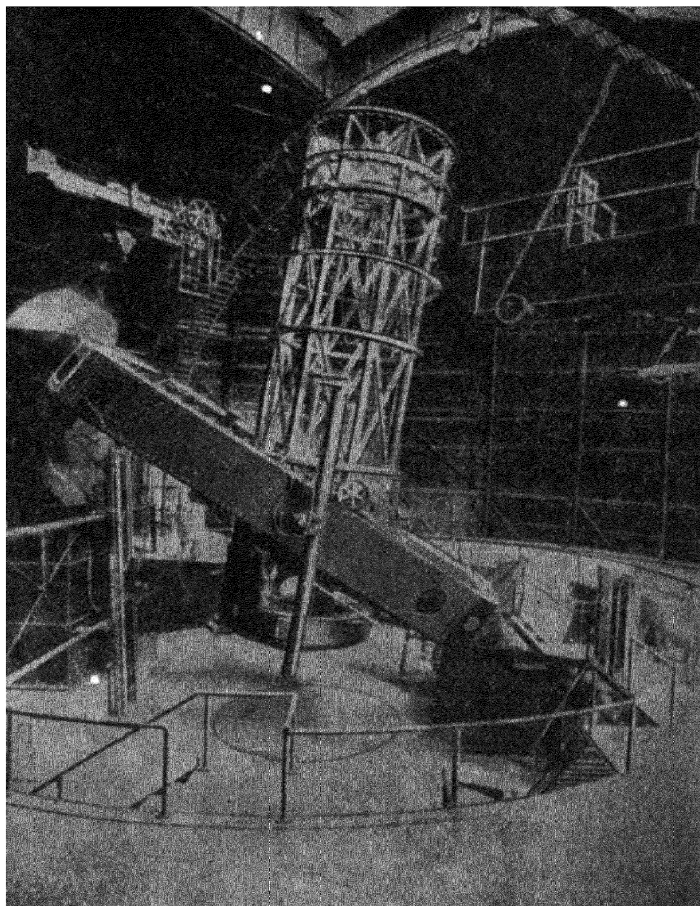
विज्ञान

## आकाश की कथा

खगोल के पिंडों का आश्चर्यजनक वर्णन

रामरतन भटनागर, एम० ए०





संसार का सबसे बड़ा दूरबीन—पृष्ठ १

## आकाश

हम आपको आकाश की कथा सुनाने बैठे हैं। आप कहेंगे—“क्या ? आकाश की बात तो हम जानते हैं। यही है आकाश।”

आप ऊपर उँगली उठा देंगे।

छोटे बालक से पूछो—“कहाँ है आकाश ?” वह भी यही उत्तर देगा। हमारे सिर के ऊपर, छत के ऊपर, पेड़ों के ऊपर, खुली जगह के ऊपर; नदी और पहाड़ों के ऊपर यह जो नीला चँदुवा तना है, यही तो आकाश है।

बालक आकाश को छूने को भी हाथ बढ़ाता है। बड़ा ऐसा नहीं करता क्योंकि वह जानता है आकाश उसे छू नहीं मिलेगा।

बालक शायद समझता है छत पर चढ़ जाने से वह आकाश को पा जायगा। वहाँ से भी आकाश दूर रहता है। शायद पेड़ पर चढ़ने से आकाश को छू ले ? परन्तु अन्त में वह देखता है चिड़ियाँ पेड़ के ऊपर उड़ रही हैं। वह कहता है चिड़ियाँ अवश्य आकाश को छू लेंगी।

परन्तु वह भ्रम में है। चिड़ियों से ऊँचे हमारे वायुयान उड़ सकते हैं। यदि वे इतने ऊँचे उड़ जायँ कि अदृश्य हो जायँ तो भी आकाश की उँचाई की थाह नहीं ले सकते। पतंगें और ऊँची उड़ती हैं। उनसे ऊँचे गुब्बारे उड़ते हैं। परन्तु यह सब नीले आकाश से नीचे रहते हैं। वास्तव में नीला आकाश फिर भी लाखों मील ऊँचा रह जाता है।

यह आकाश भी अद्भुत वस्तु है। सचमुच बहुरूपिया है। यो इसका रंग नीला है। परन्तु सदा बह नीला नहीं दिखलाई देता। जिस समय प्रातःकाल में सूर्य निकलनेवाला हो, उस समय उसमें अनेक रंग मिलते हैं। जैसे, अनेक रंगों से उस नीले चित्रपट को रंग दिया गया हो। कहीं नारंगी रंग, कहीं पीला, हरा और गुलाबी रंग। धीरे-धीरे सूर्य उदय हो जाता है। यह वर्णच्छटा विलुप्त हो जाती है। जब सूर्य पूरी तरह उदय हो जाता है तो सारा आकाश चमकीले श्वेत रंग का हो जाता है। दिन भर वह इसी रंग का रहता है। शाम को सूर्यास्त के समय फिर अपना बहुरूपियापन दिखाता है। वही लाल, पीले, हरे रंग। यह गोधूलि-बेला का समय है।

सूर्यास्त के पश्चात् रंगों का यह खेल भी समाप्त हो जाता है। फिर आकाश नीले और निर्मल रंग का दिखलाई देने लगता है। रात भर आकाश नीला रहता है। प्रातःकाल फिर वही रंगों का तमाशा।

पहले नीले रंग की बात लीजिए। लोगों का अनुमान है कि आकाश का मूल रंग नीला है। क्या यह सच है? फिर वह रंग बदलता कैसे है?

वास्तव में सूर्य का जो प्रकाश हमें सफेद रंग का दिखलाई पड़ता है, उसमें सात रंगों का मिश्रण है अर्थात् श्वेत प्रकाश सात रंगों के मेल से बना है। ये रंग हैं—(१) लाल, (२) नारंगी, (३) पीला, (४) हरा, (५) आसमानी, (६) नीला और (७) बैजनी या कासनी।

प्रकाश की लहरे उठा करती हैं। जिस प्रकार रस्सी के एक सिरे को पकड़कर झटका देने से दूसरे सिरे तक लहरे उठेंगी, कहीं ऊँची, कहीं नीची; वैसी ही बात प्रकाश की लहर के सम्बन्ध में भी है। वास्तव में प्रत्येक किरण लहर है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि प्रकाश नहीं होता या किसी प्रकार हम तक नहीं पहुँच पाता तो हम किसी वस्तु को नहीं देख सकने। यह सृष्टि हमारे लिए अधिकारपूर्ण रहती। जब किसी वस्तु पर किरणें पड़कर हमारी आँखों तक पहुँचती हैं तब वह वस्तु हमें दीखती है। जिस वस्तु का जैसा रंग दीखता है वह वस्तु उस प्रकार की किरणों को छोड़कर शेष किरणों को चूस लेती है। जब तक प्रकाश किसी वस्तु पर न पड़े, तब तक न प्रकाश दीखता है, न वह वस्तु! यही कारण है कि जब कमरे में धूल होती है, तो दरवाजे के छोटे-छोटे छेदों में से प्रकाश की सीढ़ियाँ फर्श पर उतरती जान पड़ती हैं। यदि धूल नहीं होती तो हम प्रकाश के मार्ग को नहीं देख पाते।

वायुमंडल में जलवाष्प है। सूर्य की किरणें इन जलवाष्पों पर पड़ती हैं और फिर प्रतिदीप्त होकर हम तक पहुँचती हैं। जलवाष्प नीले रंग की किरणों को छोड़कर शेष किरणों को रोक लेता है। इसलिए आकाश नीला दिखाई पड़ता है। यदि आकाश में धूल तथा जलवाष्प न हो तो आकाश बिल्कुल काला ही काला दीखे। हमारे वायुमंडल से बाहर निकलकर, जलवाष्प का शिश्न भी नहीं मिलेगा। इसलिए यदि हम अपने वायुमंडल से बाहर निकल जायें तो हमें चारों ओर अधिकार का महासमुद्र ही दिखलाई दे। वास्तव में सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों के बीच में जो आकाश फैला हुआ है, वह नीले रंग का नहीं है।

फिर यह नीला आकाश रंग कैसे बदलता है? सूर्य के उदय और अस्त होने के समय प्रायः सूर्य लाल क्यों दीखा करता है?

उषाकाल और गोधूलि-बेला में सूर्य क्षितिज के नीचे रहता है। अतः सूर्य के प्रकाश के सातों रंग पूर्णरूप से हमारे पास नहीं

आ पाते। हमारे पास तक पहुँचते-पहुँचते सूर्य की किरणें विभाजित हो जाती हैं। विभाजित होने का कारण यह है कि उन्हें धूल की मोटी तह में से गुजरना पड़ता है। इसी लिए आकाश में यह रंगों के जादू का तमाशा लगा रहता है। इस धूल की मोटी तह के कारण ही सूर्य भी उज्ज्वल श्वेत रंग का नहीं दिखलाई पड़ता, वरन् लाल दीखता है।

रात के समय सूर्य पृथ्वी के दूसरे भाग में (हमारी विपरीत दिशा में) होता है। उसकी किरणें हम तक नहीं आ सकती। तब भी छोटी लहरो की किरणें किसी प्रकार मुड़कर हम तक आ सकती हैं। सूर्य के लाल, नारंगी, पीले और हरे रंग की लहरे बहुत बड़ी होती हैं। आसमानी, नीले और कासनी रंग की लहरे छोटी होती हैं। इस प्रकार जो छोटी लहरे मुड़कर हमारे पास आती हैं, उनका रंग नीला होता है। अतः रात को आकाश हमें नीला दिखलाई देता है।

सुबह-शाम होनेवाले रंगों के तमाशे के सिवा दिन का एक आश्चर्य और है—इन्द्रधनुष। यह वर्षा के पहले या बाद दिखाई देता है। इसकी विशेषता यह है कि यह सूर्य की विपरीत दिशा में होता है। प्रातःकाल को सूर्य पूर्व में रहता है, अतः इन्द्रधनुष पश्चिम में दिखलाई देता है। सायंकाल को सूर्य पश्चिम में आ जाता है, अतः इन्द्रधनुष पूर्व में दीख पड़ता है। इसमें सात रंग—कुछ धुंधले, कुछ स्पष्ट—दिखलाई पड़ते हैं—लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैजनी या कासनी।

### इन्द्रधनुष क्यों ?

पहले समय में जब बिजली की रोशनी नहीं थी तब बड़े घरो में झाड़ों-फानूसों का प्रकाश किया जाता था। झाड़ में तीन पहलूवाले

अनेक लम्बे शीशे लटकते होते थे। इसे आँख के सामने रखने से प्रत्येक वस्तु रंगीन दिखलाई पड़ती है। बात यह है, त्रिपार्श्व में देखने से प्रकाश के सातों रंग स्पष्ट हो जाते हैं। वर्षा की बूँदें भी त्रिपार्श्व का काम करती हैं।

वर्षा होने से आकाश में जलकण बिखर जाते हैं। जब सूर्य की किरणें इन गोल बूँदों पर पड़ती हैं, तो श्वेत रंग का सात रंगों में विभाजन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त वर्षा के महीनों में बादलों में भी अनेक रंग दीख पड़ते हैं। इनका कारण भी यही है। जल-बूँदें या हवा में लटके हुए वाष्पविदु प्रकाश के श्वेत रंग का विभाजन कर देते हैं। इस प्रकार प्रकृति बादलों के नीचे हरे और लाल रंग की पट्टियाँ लगा देती है।

यह हुई दिन की बात।

दिन में आकाश में कुछ दिखलाई नहीं पड़ता और रात में सहस्रों तारे चमकते दिखाई पड़ते हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि दिन का आकाश शून्य है। सूर्य-ग्रहण के समय में दिन में तारे दिखलाई देते हैं। कितने ही पतंगबाज दिन में ही तारे देख लेते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दिन में भी तारे रहते हैं परन्तु सूर्य के प्रचण्ड ऐश्वर्य के सामने उनकी ज्योति मन्द पड़ जाती है। बालसूर्य के उगते ही तारे और चन्द्रमा एक-एक करके हीनज्योति होने लगते हैं। वास्तव में वे जाते कहीं नहीं। दूरदर्शक से हम उन्हें दिन में भी देख सकते हैं। कभी-कभी सूर्योदय के बहुत बाद तक दो एक प्रकाशमान तारे और चन्द्रमा दिखाई देते रहते हैं; कभी-कभी सूर्यास्त के पहले भी यही दशा होती है।

आकाश के अनेक चगकते हुए पिंडों में से हम सूर्य और चन्द्रमा से तो बहुत ही अच्छी तरह परिचित हैं। वे जैसे हमारे बहुत पास के कुटुम्बी हों। सूर्य के उदय और अस्त होने के सम्बन्ध में और चन्द्रमा की कलाओं के विषय में मनुष्य का ज्ञान बहुत प्राचीन है। इन्हीं के अध्ययन से उसने अनन्तकाल को वर्ष, मास और दिन में विभाजित किया है।

हमारे देश के ज्योतिषियों ने आकाशमंडल (खगोल) को १२ राशियों में बाँटा है जिनमें सूर्य वर्ष भर में चक्कर लगा लेता है। प्रत्येक राशि में सूर्य एक महीने रहता है। उन राशियों के नाम इस प्रकार हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुष, मकर, कुंभ और मीन। उन्होंने खगोल को २७ नक्षत्रों में भी बाँटा है जिनमें महीने भर में चन्द्रमा घूमता है। ये २७ नक्षत्र ये हैं—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसुः, पुष्य, अश्लेष, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती। वास्तव में आकाश-मंडल का यह विभाजन चन्द्र-राशि स्थापित करने जैसा हुआ। प्रत्येक नक्षत्र-राशि में अनेक नक्षत्र (तारे) होते हैं जिनकी संख्या एक से लेकर सौ तक हो सकती है। नक्षत्र के सबसे उज्ज्वल तारे को योग-तारा कहा गया है। इन्हीं राशियों और नक्षत्रों में ग्रहों और उपग्रहों के प्रवेश और यात्रा को भारतीय ज्योतिषियों ने प्रमुखता दी है और इसी बात को लेकर दिन, तिथि, नक्षत्र, योग और करण की गणना की प्रणाली चलाई है। हमारे यहाँ के पञ्चांगों का आधार वास्तव में नक्षत्रों और ग्रहों-उपग्रहों का अध्ययन है।

कदाचित् आप आकाश के कुछ तारों से परिचित होना चाहेंगे। हमारे देश में वर्ष के कई महीने आकाश निर्मल रहता है, इसलिए यहाँ ग्रहों और नक्षत्रों का अध्ययन इतना कष्टसाध्य नहीं है जितना अन्य देशों में। नीचे हम कुछ विशेष तारों के सम्बन्ध में लिखेंगे :—

१—सप्त-ऋषि—इन सात तारों को जो आकाश में पास-पास उगते हैं एक ही नाम से पुकार लिया जाता है। फाल्गुन की रात में उत्तर-पूर्व की दिशा में इन्हें सुगमता से ढूँढा जा सकता है। इन सात तारों का नामकरण भारतीय ऋषियों के नाम पर किया गया है। ये नाम ये हैं—ऋतु, पुलह, अत्रि, पुलस्त्य, अंगिरा, वशिष्ठ और मरीची। इनमें पहले चार लगभग समकोण बनाते हैं और पिछले तीन अत्रि से खींची हुई कुछ तिरछी रेखा पर स्थित हैं।

२—ध्रुव-तारा—सप्तर्षि के समकोण के दो तारों, पुलह और ऋतु को मिलाती हुई सीधी रेखा खींची जाय तो कुछ दूर उत्तर दिशा में एक प्रकाशमान नक्षत्र मिलेगा। ऋतु और पुलह में जितना अन्तर है उससे यह पाँचगुनी दूरी पर स्थित है। इसके समीप कोई प्रकाशमान नक्षत्र नहीं है, इससे इसके पहचानने में भूल नहीं की जा सकती।

प्राचीन समय में जब दिशा-निर्देशक यंत्र नहीं बने थे, नाविक इसी तारे के सहारे दिशा खोजते थे। इसका नाम ध्रुव इसी लिए है कि वह अपनी दिशा नहीं बदलता। यह सदैव उत्तर में दिखाई पड़ता है। अन्य तारे पृथ्वी की परिक्रमा के कारण समय-समय पर अपने स्थान से हटे जान पड़ते हैं।

३—लघुसप्तर्षि—वास्तव में हम ध्रुवतारे को एक अन्य तारा-समूह का सदस्य मान सकते हैं। ध्रुव-समेत ये तारे साथ हैं और इनका आकार भी सप्तर्षि जैसा दीख पड़ता है। सप्तर्षि में जो स्थान मरीची

का है, वही स्थान लघुसप्तर्षि में ध्रुव का है। यह भी समकोण के एक तारे से खिंची हुई रेखा, पर स्थित तीन तारों में से अन्तिम है। ध्रुवतारे के सहारे लघुसप्तर्षि को पहचान लेना कठिन नहीं है।

४—कश्यपमंडल—इस मंडल में ५ प्रमुख तारे हैं जो हिन्दी स्वर 'उ' की तरह फैले हुए हैं। ये ध्रुवतारे से इतनी ही दूर हैं जितनी दूर सप्तर्षि हैं, परन्तु ये उनसे ठीक विपरीत दिशा में हैं।

५—ब्रह्महृदय, अग्नि, प्रजापति—ये भी उत्तर के तारे हैं जो आकाशगंगा के पास पड़ते हैं। ये मृगशिरा नक्षत्र-समूह और ध्रुवतारे के बीच में भी हैं और यदि मृगशिरा, आर्द्रा अथवा अग्रहायण नक्षत्रों में भी किसी से भी परिचय हो तो इन्हें पहचानना कठिन नहीं है। यदि अत्रि और क्रतु को मिलाती हुई रेखा आगे बढ़ाई जाय तो ब्रह्महृदय लगभग उसी रेखा पर मिल जायगा। इसके पूर्व में प्रजापति और दक्षिण में अग्नि है। यदि ध्रुव और ब्रह्महृदय को एक रेखा से मिला दिया जाय तो प्रजापति उसकी समानान्तर रेखा पर उतनी ही दूर होगा। ये तारे हमारे आकाश में लगभग एक ही दिशा में और लगभग एक ही गति से चलते रहते हैं।

६—अभिजित—यह अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र ज्येष्ठ मास की रात में उत्तर-पूर्व की ओर और मार्गशीर्ष की रात में उत्तर-पश्चिम की ओर क्षितिज से ऊपर उठा दिखलाई पड़ता है। पुलस्त्य और अत्रि को जोड़नेवाली रेखा को आगे बढ़ाया जाय तो यह उसके पास ही पड़ेगा। इसके पास ही, क्षितिज से मिले हुए पाँच तारे हैं जिनसे आधुनिक ज्योतिषियों ने हंस-समूह का निर्माण किया है। ज्येष्ठ मास में समूह ठीक उत्तर-पूर्व में दिखाई देता है।

७—लुब्धक या मृगव्याध—यह दक्षिण का तारा है। इस जैसा

उज्ज्वल नक्षत्र आकाश के इस भाग में नहीं हैं। अपने समूह के तारों में तो इसका प्रथम स्थान है ही। फाल्गुन की रात में हम इसे अगस्त के ऊपर चमकता हुआ देख सकते हैं।

८—आर्द्रा, अग्रहायण, मृगशिरा और रोहिणी—ये सब दक्षिण के प्रकाशमान नक्षत्र हैं। लुब्धक, मृगशिरा और रोहिणी लगभग एक ही सीधी रेखा में पड़ते हैं। इस रेखा के उत्तर में रोहिणी है और दक्षिण में लुब्धक।

९—अगस्त—यह उज्ज्वल तारा ध्रुव के ठीक दक्षिण में पड़ता है। यह शरद्-ऋतु में उदय होता है।

१०—पुष्य, मघा, सिंह, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी—यदि ऋतु और पुलस्त्य को एक रेखा से मिला दिया जाय और उसे आगे-पीछे बढ़ाया जाय तो उसके एक सिरे पर ध्रुव और कश्यपमंडल रहेंगे, दूसरी ओर ये तारे। पुष्य, मघा और सिंह इस रेखा के एक ओर होंगे, पूर्वा और उत्तरा-फाल्गुनी दूसरी ओर।

११—स्वाति—उत्तर दिशा में अभिजित् और ब्रह्महृदय को छोड़कर यह सबसे अधिक उज्ज्वल नक्षत्र है। फाल्गुन रात में यह क्षितिज के पास दिखलाई पड़ता है। यदि अंगिरा, वशिष्ठ और मरीची को एक रेखा से मिलाकर उसे दुगुना कर दिया जाय तो वह रेखा इस तारे तक पहुँच जायगी।

अब हम आकाश के एक और प्रकार के पिंडों के सम्बन्ध में लिखेंगे। इन्हे ग्रह कहते हैं।

नगी आँखों से आकाश में कुछ पिंड ऐसे भी दिखाई देते हैं जो निरन्तर घूमते रहते हैं। उनका स्थान निश्चित नहीं है। ये ग्रह हैं। गणित-द्वारा यह बताया जा सकता है कि इनमें से कौन-सा पिंड कब

उदय होगा और आकाश के किस भाग में। ये पिंड ग्रह हैं। वास्तव में ये पृथ्वी जैसे पिंड हैं जो हमारी पृथ्वी की ही तरह सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं। ये ग्रह हैं—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि। स्वयं हमारी पृथ्वी ग्रह है परन्तु प्राचीन ज्योतिषी इसे ग्रहों में स्थान नहीं देते थे।

इन ग्रहों, तारों के अतिरिक्त हमें आकाश में एक और अद्भुत वस्तु भी मिलती है—‘आकाशगंगा’। क्षितिज के एक किनारे से दूसरे किनारे तक दूध की एक नदी बहती दिखलाई देती है। लोग इसकी ओर इशारा करके कहते हैं—“यह स्वर्ग की गंगा” है; इसमें स्वर्ग के देवता नहाते हैं। भगीरथ महाराज बड़ी तपस्या के बाद इस गंगा को पृथ्वी पर उतार लाये हैं। इसी प्रकार की एक गंगा पृथ्वी के नीचे है।

आकाश के आश्चर्यों को समाप्त करने से पहले हमें ‘चन्द्रधनुष’ की बात भी लिखनी होगी। कभी-कभी चन्द्रमा को एक बड़ा रंगीन चक्कर घेरे रहता है। इसका कारण भी वही है जो इन्द्रधनुष का—जलवाष्प, में होकर आने से प्रकाश की किरणें सान रंगों में विभाजित हो जाती हैं। चन्द्रमा का प्रकाश हलका होता है, अतः सभी रंग स्पष्ट नहीं हो पाते। वह सूर्य से छोटा है, इसलिए उसका पूरा चक्कर दिखलाई पड़ता है, इन्द्रधनुष की तरह आधा या कम नहीं।

इस प्रकार हमने आकाश से अपना परिचय कर लिया।

उसमें चार तरह के पिंड हैं—सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ग्रह। इनके अतिरिक्त हमें आकाशगंगा के दर्शन होते हैं। दूरदर्शक से देखने पर आकाशगंगा में काले धब्बे से जान पड़ते हैं। ये धब्बे “नीहारिकायें” हैं। वास्तव में

ये खुली हुई खिड़कियाँ हैं जिनमें होकर हम अपने ब्रह्मांड से बाहर के आकाश से परिचय प्राप्त करते हैं।

ब्रह्माण्ड क्या है ? नक्षत्रों, सूर्यों और ग्रहों-उपग्रहों को मिलाकर जो संसार बनते हैं वे ब्रह्माण्ड कहलाते हैं। सूर्य भी एक नक्षत्र है। नक्षत्र लगभग स्थिर हैं। ग्रह उन्हें घेरकर घूमते हैं। किसी नक्षत्र और उसके ग्रहों को एक शब्द में हम “सौरजगत्” कह सकते हैं। हमारे अपने सौर जगत् का नायक हमारा सूर्य है और बुद्ध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवा-न्तर ग्रह, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण और कुबेर उसकी परिक्रमा करते हैं। इनमें से कितने ही पिंडों (ग्रहों) को घेरकर अन्य ग्रह परिक्रमा करते हैं; उन्हें उपग्रह कहते हैं। इन सब पिंडों की दूरी इतनी है कि कल्पना भी काम नहीं करती। हम उसे किसी भी प्रकार मन में नहीं बिठा सकते। इन सब पिंडों के बीच में क्या है ? यही हमारा आकाश ! यह आकाश हमारे ब्रह्माण्ड को भरे हुए है। हमारे ब्रह्माण्ड से बाहर भी यह आकाश फैला हुआ है। उसमें अनेक ब्रह्माण्ड और अनेक विश्व हैं।

परन्तु आकाश क्या है ?

हम इसका उत्तर नहीं दे सकते। अब भी वह हमारे लिए रहस्य है।

प्राचीन विद्वानों ने आकाश को सर्वव्यापक और तत्त्वों में अत्यन्त सूक्ष्म माना है। सब तत्त्वों का मूलकारण भी वही है। अन्त होने पर सब तत्त्वों की परिसमाप्ति भी आकाश-तत्त्व में ही है।

आधुनिक विज्ञान भी कहता है—आकाश सर्वव्यापी है। उससे अधिक सूक्ष्म पदार्थ कोई नहीं। उसके बिना सूर्य का प्रकाश और ताप हमें नहीं मिल सकता। विद्युत् और चुम्बक की तरङ्गें भी आकाश

मे ही उठा करती है। प्रकाश का वाहन भी आकाश-तत्त्व ही है। यदि आकाश नहीं होता तो न हम रेडियो सुन सकते थे, न बेतार का कोई तार भेज सकते थे, न कुछ देख ही सकते थे।

## सूर्य

आकाश के समस्त पिंडों में सूर्य सबसे अधिक तेजस्वी है। प्रकाश और गरमी की जितनी मात्रा हमें उससे मिलती है, उतनी किसी अन्य पिंड से नहीं मिलती। उसी के कारण हमारा जीवन सम्भव है।

परन्तु विज्ञान और बाते भी बतलाता है। वह कहता है सूर्य हमारी पृथ्वी का पिता है। करोड़ों वर्ष हुए, सूर्य के जलते हुए वाष्प-पिंड से एक छोटा-सा पिंड अलग हो गया। यह धीरे-धीरे ठंडा होता गया। वाष्प ने द्रव का रूप धारण कर लिया। फिर धीरे-धीरे इस छोटे-से द्रवीभूत पिंड पर टोस पपड़ी जम गई। इसे हम धरातल कहते हैं। जब पृथ्वी का ताप कम होता हुआ विशेष मात्रा तक पहुँच गया तो जीवन प्रकट हुआ। जीवन का प्रकट होना आवश्यक बात थी अथवा केवल आकस्मिक घटना, इसके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते। परन्तु इस घटना के फलस्वरूप आज पृथ्वी पर अनेक प्रकार के उद्भिज और प्राणी हैं। पृथ्वी पर जितने प्रकार के प्राणी हैं, उनमें श्रेष्ठतर मनुष्य है जो विचार करने की शक्ति रखता है। इस तरह सूर्य हमारा भी जनक है।

विज्ञान बतलाता है कि इस पृथ्वी का सूर्य से केवल उत्पत्ति, प्रकाश और गरमी का ही सम्बन्ध नहीं है। वह एक अन्य दृढ़ बन्धन से भी

उससे बँधी है। सूर्य पृथ्वी को अपने चारों ओर गुण में बाँधकर घुमा रहा है और पृथ्वी बेचारी घूम रही है। इस गुण को वैज्ञानिक भाषा में “मध्याकर्षण,” “गुरुत्वाकर्षण” अथवा केवल “आकर्षण” कहते हैं। रस्सी यहाँ नहीं है, केवल खिचाव-मात्र है परन्तु फल वही होता है जो रस्सी के मौजूद रहने से होता।

सूर्य के सामने हमारी पृथ्वी वामन से अधिक बड़ी नहीं है—सच तो यह है कि वह वामन से भी कई गुनी छोटी निकलेगी। पृथ्वी का व्यास ७,९२० मील के लगभग है। सूर्य का व्यास ८,६४,००० मील है। इससे यह साफ हो जाता है कि सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से १०९ गुना बड़ा है। सूर्य इतना बड़ा है कि यदि हम चाहें तो उसके पिंड से हमारी पृथ्वी-जैसी बड़े १३ लाख पिंड निकल सकते हैं। इतने बड़े पिंड की कल्पना भी हम सरलता से नहीं कर सकते।

इतने बड़े पिंड की तौल के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है? न्यूटन के आकर्षण-नियम के द्वारा हम सूर्य को तौल सकते हैं। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि सूर्य का घनत्व पृथ्वी के घनत्व की अपेक्षा लगभग चौथाई है। यदि उसका घनत्व इतना ही होता जितनी पृथ्वी का तो सूर्य पृथ्वी से १३ लाख गुना भारी होता। परन्तु वास्तव में वह पृथ्वी से केवल ३ लाख गुना भारी है। इसका अर्थ यह हुआ कि तराजू के एक पलड़े में सूर्य होगा और दूसरे पलड़े में हमारी तीन लाख पृथ्वियाँ।

पृथ्वी समस्त वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है। यदि हम किसी भी वस्तु को हाथ में छोड़ दें तो वह धरती पर गिर पड़ती है। यदि उस वस्तु को पृथ्वी का धरातल बीच में रोक नहीं लेता तो फिर वह पृथ्वी के केन्द्र में जाकर ठहरती। वस्तुओं के भार का कारण यही आकर्षण है। वस्तु

जितनी अधिक आकर्षण-शक्ति से पृथ्वी के केन्द्र की ओर खिचती है, उतना ही अधिक उसका वजन होता है। अपने महाकार के कारण सूर्य की आकर्षण-शक्ति पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से २८ गुनी है। हमारे यहाँ के सेर भर के बाट से सूर्य पर २८ सेर वस्तु तौली जा सकेगी। पाव भर तौल की पुस्तक सूर्य पर ७ सेर भारी होगी; दो-चार पुस्तकें भी साथ हों, तो मनुष्य पशु की तरह उन्हें ढोया करे। मान लीजिए, आपको कहीं ऐसा गुटका मिल गया जिसको मुँह में रख लेने भर से आप पर ताप का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। उड़नखटोले पर बैठकर आप सूर्य पर पहुँच भी गये। परन्तु वहाँ जो होनहार घटेगी उसकी आपने कल्पना भी नहीं की होगी। यदि आपका घड़ १ $\frac{1}{2}$  मन का है, तो वह वहाँ ४२ मन का हो जायगा। टाँगें तो इतना बोझ सँभाल नहीं सकती, अतः आप अपने ही बोझ से ढह जायेंगे और हाड़-मांस के लोदे बनकर पड़े रहेंगे।

अब सूर्य के ताप की कथा सुनिए। वहाँ कितनी गरमी होगी, यह हम मनुष्यों के लिए कल्पनातीत है। सूर्य की भट्ठी में यदि हमारी पृथ्वी उठाकर भोंफ दी जाय तो वह पल भर में भाप बनकर उड़ जायगी। इस गरमी का कोई ठिकाना है। सूर्य के धरातल का तापक्रम ६,००००० से कम नहीं होगा। केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के प्रो० एडिंगटन ने यह सिद्ध किया है कि सूर्य के केन्द्र का तापक्रम ४ करोड़ डिग्री है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जेम्स जीन्स ने अपनी एक पुस्तक में सूर्य की यात्रा का वर्णन किया है। कहना नहीं होगा कि उनकी यह यात्रा केवल कल्पना-मात्र है। वर्णन का जो भाग तापक्रम से सम्बन्ध रखता है, उसे हम यहाँ देगे। वे लिखते हैं—

“अब लपटों की बड़ी-बड़ी महराबों और फुलझड़ियों ने हमें घेर

लिया। वे हमारे चारों ओर ही नहीं हैं। वृन् शिर पर भी है। हम सूर्य के जलते हुए वातावरण में पहुँच गये हैं। हमारे चारों ओर सहस्रों बार चकाचौध उत्पन्न करनेवाला प्रकाश है। हम जैसे प्रकाश और ताप में डूब गये हैं। यहाँ न कोई ठोस पदार्थ है, न द्रव। यदि कुछ है तो वह केवल गैस (वाष्प) के रूप में होगा। जलती हुई भाप हमें घेरे हुए है।

हमें प्रतीक्षा है, कहीं किनारा लगे; हमारा यान किसी ठोस धरातल पर उतरे। परन्तु प्रतीक्षा व्यर्थ है। हम बराबर बढ़ते जा रहे हैं। अब हम लपटों के समुद्र के भीतर कई सौ मील बढ़ आये। ये कई हजार मील भीतर आगये। ठोस धरातल अब भी नहीं आया। शायद आगे चलकर मिले। अब हम लाखों मील भीतर बढ़ आये हैं परन्तु ठोस धरातल का फिर भी पता नहीं है। धीरे-धीरे बात हमारी समझ में आती है। हम सूर्य के अन्तःपुर में पहुँच गये हैं, परन्तु वाष्प के सिवा वहाँ कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं है! सूर्य का बाहरी वातावरण ही इतना गरम था कि ठोस अथवा द्रव के रूप में किसी वस्तु का रहना असम्भव था। यहाँ गरमी और भी अधिक है। जो है, वह वाष्प के रूप में बदल गया है। पृथ्वी के वातावरण को भेदकर हमारा यान ठोस धरातल पर उतरता है; अन्य ग्रहों पर भी कहीं न कहीं ठोस धरातल आ ही जाता है, परन्तु यहाँ सब हवा-हवा है। हमारे यान की प्रगति में कोई भी वस्तु बाधक नहीं होती और हम सीधे सूर्य के केन्द्र की ओर खिंचे हुए चले जा रहे हैं।

जब हम सूर्य के बाहरी वातावरण में पहुँचे थे और लपटों की लहरों और महाराबों के भीतर चल रहे थे, तो हमने थर्मामीटर देखा था। वह ७-८ हजार डिग्री तापक्रम बता रहा था। कुछ भीतर आने पर तापक्रम

९-१० हजार पर पहुँचा। यहाँ जब हम अपनी अग्नि की चादर के बाहर भाँकते थे, तो हमें अपनी पृथ्वी दिखलाई दे जाती थी। कुछ अधिक आगे बढ़ने पर वह अदृश्य हो गई। चादर इतनी मोटी हो गई कि बाहर की चीज हम नहीं देख पाते। उसके बाद हम सूर्य की ओर खिंचे जा रहे थे और तापक्रम बड़ी शीघ्रता से बढ़ रहा था। वह करोड़ों डिग्री पर जा पहुँचा। अब हम ठीक सूर्य के केन्द्र में हैं और अपने थर्मामीटर पर ४० करोड़ डिग्री तापक्रम पढ़ रहे हैं। जब हम पृथ्वी पर लौटकर पहुँचेंगे तो इतने तापक्रम की बात कैसे समझा सकेंगे। हमारे मन में एक बात आती है—यदि हम अपनी जेब से एक अठन्नी निकालते और उसको इतना गरम करते कि उसका तापक्रम सूर्य के केन्द्र के तापक्रम के समान होता तो क्या होता ? जहाँ हम यह अठन्नी रख देने, उसके सहस्रों मील के घेरे में एक भी प्राणी जीता न बचता।”

आप प्रश्न करेंगे, सूर्य में इतनी गरमी कहाँ से आती है ? करोड़ों वर्ष से यह बराबर गरमी और प्रकाश दे रहा है, आखिर यह कब तक इसी तरह करता रहेगा ? क्या इसकी शक्ति कम हो रही है ? यदि हाँ, तो किस गति से ?

ये प्रश्न सचमुच अच्छे प्रश्न हैं। इस प्रकार के प्रश्न प्रत्येक विचार-शील मनुष्य के हृदय में उठेंगे। विज्ञान ने इन प्रश्नों का उत्तर देने की चेष्टा की है और वह कुछ-कुछ सफल भी हुआ है। यहाँ पर हम पहले प्रकाश और गरमी के मूल कारण पर विचार करेंगे।

अनुमान किया जाता है कि यदि हमारा सूर्य पत्थर के कोयले का बना होता तो जितनी गरमी यह आज दे रहा है उतनी गरमी वह केवल डेढ़ हजार वर्ष तक उत्पन्न कर सकता। इसके पश्चात् सूर्य का चिह्न

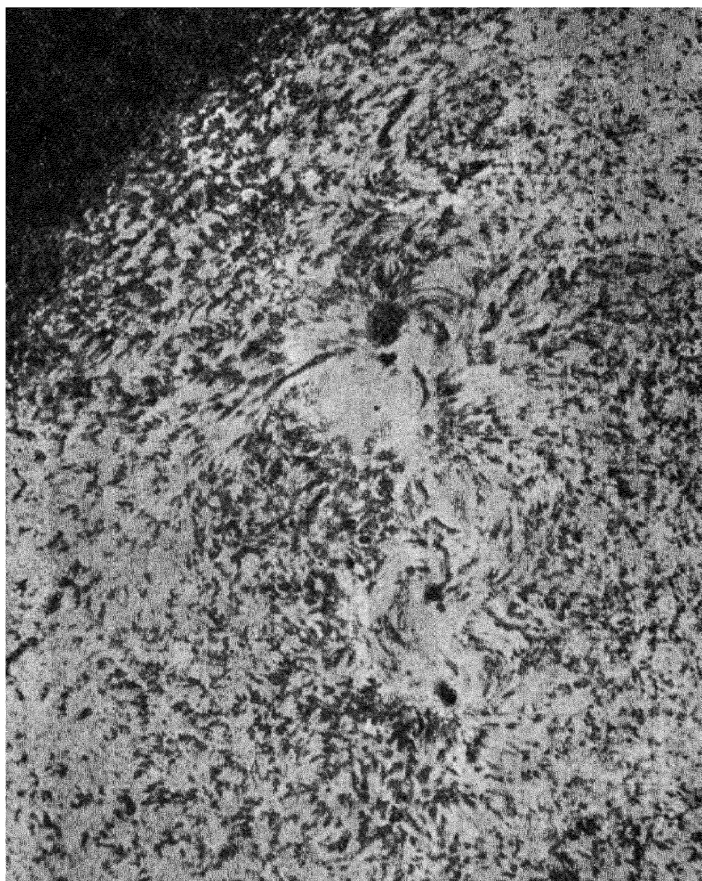
भी नहीं रह जाता। इतनी गरमी उत्पन्न करने का कारण साधारण नहीं हो सकता। १८५४ में जर्मन वैज्ञानिक हेल्म होल्ट्स ने यह सिद्ध किया कि सूर्य अवश्य सिमट रहा है और इस सिमटने के कारण ही उसका पदार्थ दबकर इतना गरम हो जाता है। उसका कहना था कि यदि सूर्य का व्यास २४० फुट घटता जाय तो उससे इतनी गरमी मिलती रहेगी कि उसकी मूल गरमी में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। उसका यह भी कहना था कि सूर्य के सिमटने का कारण आकर्षण है, वह अपने ही आकर्षण के कारण दबा जा रहा है। यदि सचमुच यह बात है तो इसकी सत्यता का पता कैसे लगे? गणित के द्वारा पता चलता है कि ग्रहों को जन्म देने के बाद यदि सूर्य बराबर सिकुड़ता गया होगा तो आज की परिस्थिति तक पहुँचने में उसे ढाई करोड़ वर्ष लगे होंगे। परन्तु स्वयं पृथ्वी की आयु ६ करोड़ से किसी भी प्रकार कम नहीं है। इतने समय में तो सूर्य को बहुत ही छोटा हो जाना चाहिए था। कुछ लोगों ने कहा—सूर्य पर लगातार भयंकर उल्कापात हो रहे हैं और घर्षण के कारण बराबर गरमी उत्पन्न हो रही है। यह सच है तो इतनी अधिक मात्रा में गरमी उत्पन्न करने के लिए उल्काओं की मूसलधार वर्षा होनी चाहिए। क्या समस्त आकाश में इतनी उल्काये हैं जो सहस्रों वर्षों में भी शेष नहीं हो रही हैं जब सूर्य उनको इस सख्या में नष्ट कर रहा है? आधुनिक भौतिक विज्ञान-शास्त्रियों का कहना है कि उन्होंने मूल कारण का पता लगा लिया है। एक रासायनिक तत्त्व दूसरे तत्त्व में बदल जाता है। जब ऐसा होता है तो भयंकर गरमी निकलती है। रेडियम को हीलियम में बदला जाता है और एक रुपये भर रेडियम से इस प्रक्रिया में उतनी गरमी पैदा होती है जितनी ८४ मन कोयले के जलने से होती। हीलियम गैस का पता पहले-पहल

सूर्य में ही लगा था। सम्भव है, वहाँ रेडियम बड़ी मात्रा में उपस्थित हो जो टूटकर हीलियम बन रहा हो और साथ ही इतनी गरमी उत्पन्न कर रहा हो।

परन्तु इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन के इस सिद्धान्त ने तो क्रान्ति ही उत्पन्न कर दी, जिसके अनुसार पदार्थ और शक्ति वास्तव में एक ही वस्तु है। अब कुछ वैज्ञानिक यह विश्वास करने लगे हैं कि सम्भव है, सूर्य के भयंकर ताप और दबाव से पदार्थ का एकदम नाश हो जाता हो और वह शक्ति के रूप में बदल जाता हो, किसी अन्य पदार्थ के रूप में नहीं।

सूर्य की तरह बड़े, जलते हुए, पिंड की बनावट भी कुछ कम कौतूहलजनक नहीं है। सूर्य के पिंड के भीतरी भाग के सम्बन्ध में कुछ भी जानना बहुत कठिन है। सूर्य का जो भाग हमें प्रतिदिन दिखलाई पड़ता है, वह गर्म और दबी हुई गैसों से बना हुआ है। यह भाग अन्य भागों की अपेक्षा अधिक घना है। इसी भाग पर “सूर्य-कलक” दिखलाई पड़ते हैं। (इन “सूर्य-कलंको” के सम्बन्ध में हम आगे कहेंगे) यह ठीक गोल पिंड जैसा लगता है। न इसमें पर्वत-जैसी कुछ उठी चीज़ दीखती है, न गड्ढे ही। परन्तु सूर्य हमसे इतना दूर है कि यदि वहाँ छोटे-मोटे पहाड़ या गड्ढे हों तो हमें पता भी नहीं लग सकता।

इस पिंड के ऊपर गैसों की एक मोटी तह है। इसकी ऊँचाई ५०० और १,००० मील के बीच में कही है। इस तह के सम्बन्ध में हम बहुत कुछ जानते हैं। इसमें बहुत-से ऐसे पदार्थ पाये जाते हैं जो हमारी पृथ्वी पर भी मौजूद हैं। इस तह के बाहर गैसों की एक तह और है। यह तह दस-पाँच सहस्र मील गहरी है। जिस समय सूर्यग्रहण होता है, उस समय इसकी ऊपरी सतह से लाल रंग की ज्वाला की



सूर्य का गड्ढेदार धरातल—चित्र १८



सूर्य की अभिशिखार्ये—पृष्ठ १६

जीभें निकलती दिखलाई पड़ती है। इसके बाद “सूर्य का मुकुट” है। ग्रहण के समय यह बहुत सुन्दर लगता है और सचमुच सोने के मुकुट की तरह चमकता है। इसका आकार अनियमित है। यह सूर्य के ऊपरी सतह से बीस-पचीस लाख मील तक फैला हुआ है। इसे कॉरोना कहते हैं। कॉरोना धीरे-धीरे काले आकाश में विलीन हो जाना है। सर्व ग्रहण के समय भी कॉरोना और उससे नीचे की गैस की तह में इतना प्रकाश होता है जितना सप्तमी की चाँदनी में।

सूर्य से सदैव लम्बी-लम्बी लपटे उठा करती है। ये लपटे लाखों मील लम्बी होती हैं। पृथ्वी की किसी भी वस्तु से हम उनकी तुलना नहीं कर सकते। ये लपटे दो प्रकार की होती हैं। कुछ लपटे शान्त होती हैं। उनका आकार-प्रकार बहुत धीरे-धीरे बदलता है। इस कारण हम कुछ विशेष लपटों को बराबर पहचान सकते हैं। हमारी पृथ्वी की तरह सूर्य भी अपनी धुरी पर परिभ्रमण करता है। यह बात इन लपटों से सिद्ध हो जाती है। जब सूर्य घूम जाता है तो लपट दिखलाई नहीं पड़ती। वह उसके पीछे जाकर छिप जाती है। परन्तु जब सूर्य आधा चक्कर लेकर फिर निकलता है तो यह लपट उसी रूप में देखी जा सकती है। ये लपटे सौरमंडल में एक ही स्थान पर तैरते हुए बादल के समान जान पड़ती हैं। दूसरे प्रकार की लपटें आकार-प्रकार बदलती रहती हैं, इसलिए उन्हें पहचानना कठिन ही नहीं, असम्भव है। ये पहली लपटों की अपेक्षा अधिक चमकीली होती हैं। ये अधिकतः सूर्य-कलंकों के आस-पास पाई जाती हैं। कभी-कभी तो ये लपटें पाँच मील ऊँची होती हैं।

सूर्य के कॉरोना के सम्बन्ध में हमें विशेष जानकारी नहीं है। वास्तव में अभी उसकी परीक्षा के लिए समय ही नहीं मिला। हम

पहले कह आये है कि यहाँ केवल सर्वसूर्य-ग्रहण के समय ही दिखलाई पड़ता है। एक तो सर्वसूर्य-ग्रहण बहुत कम होते हैं, दूसरे उनमें भी ग्रहण का समय बहुत कम होता है। अब तक जितने भी ग्रहणों की परीक्षा की गई है यदि उन सबका समय जोड़ा जाय तो एक घंटे का समय निकलेगा। इस एक घंटे के समय में भी वायुमंडल, बदली, आँधी—अनेक बाधाएँ हैं। परन्तु फिर भी वैज्ञानिकों के पास कॉरोना के बहुत-से फोटों इकट्ठे हो गये हैं।

अब तक के अध्ययन का सार इस प्रकार है। कॉरोना और सूर्य-कलकों में अवश्य किसी प्रकार का सम्बन्ध है। जब कलकों की संख्या अधिक होती है, तो कॉरोना प्रायः गोल होता है; जब कम होती है तो सूर्य की मध्य-रेखा के पास कॉरोना की रश्मियाँ लम्बी और ध्रुवों के पास की रश्मियाँ छोटी होती हैं। परन्तु आखिर यह सम्बन्ध क्यों है, इस प्रकार कॉरोना का आकार क्यों बदलना है—ये बातें अभी भविष्य के गर्भ में छिपी हैं। दूसरी बात कॉरोना के सम्बन्ध में यह मालूम हुई है कि उसका घनत्व बहुत सूक्ष्म है। १८४३ का पुच्छलतारा कॉरोना में कम से कम ३,००,००० मील तक घुसा चला गया, परन्तु जब वह बाहर निकला तो उसके पदार्थ में किसी प्रकार की हानि नहीं हुई थी। गणना से पता चलता है कि उसकी गति भी वही रही, कॉरोना के पदार्थ ने उसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं की। स्वीडन के एक वैज्ञानिक का कथन है कि कॉरोना के ढाई वर्गगज स्थान में केवल एक अत्यन्त सूक्ष्म कण होगा।

परन्तु कॉरोना अब भी आकाश का रहस्य बना है। यह समझ में नहीं आता कि उसमें प्रकाश कहाँ से आता है। जो भाग सूर्य के निकट है, उनके सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि वे सूर्य के प्रकाश से चमकते

है, परन्तु उसके बाहर के भागों में अवश्य ही सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता; फिर वे चमकते क्यों हैं ? दूसरा प्रश्न यह है कि कॉरोना के कण परस्पर मिलकर पिंड क्यों नहीं बना लेते ? इतने कम घनत्व का पिंड टंडा क्यों नहीं हो जाता ?

सूर्य के सम्बन्ध में सबसे आश्चर्यजनक आविष्कार उसके कलकों का है। चन्द्रमा के कलक सबको दिखलाई पड़ते हैं और वह बेचारा उनके लिए बुरी तरह बदनाम है, परन्तु पिता सूर्य के कलंक की बात इनकी महत्ता से इतनी ढकी है कि उसे कोई नहीं जानता।

यहाँ हम “कलंक” शब्द की थोड़ी व्याख्या कर दें। चन्द्रमा के काले दागों को हम ‘कलंक’ कहते हैं। सूर्य पर भी इस तरह के दाग पाये गये हैं परन्तु वे काले नहीं हैं। वास्तव में वे आस-पास के रंग से कहीं ज्यादा चमकीले हैं। फोटोग्राफ में ये काले ‘चावल के दाने’ जैसे दिखलाई पड़ते हैं। कुछ दाने गोल होते हैं, कुछ दीर्घवृत्ताकार। कभी-कभी कुछ कई दाने पास आ जाते हैं और एक-दूसरे में घुल-मिलकर बड़े बन जाते हैं। एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं, कुछ हलके-हलके चलते हैं; कुछ इतने तेज चलते हैं जैसे आँधी में उड़ रहे हों। ये दाने अब दिखलाई पड़े, अब अदृश्य हो गये। इससे यह अनुमान किया जाता है कि इनका जीवनकाल अत्यन्त कम है। चन्द्र-कलक स्थायी है। सूर्य-कलक बनते-मिटते रहते हैं। इनके आकार में भी बड़ा अन्तर होता है। कुछ कलंक तो इतने बड़े हैं कि उनमें हमारी दस-बारह पृथ्वियाँ समा जायेंगी। ये कलंक पूर्व से पश्चिम की ओर चलते हुए दिखलाई पड़ते हैं। यदि हम प्रति-दिन कुछ बड़े कलकों को ध्यान से देखते रहें तो यह अवश्य स्पष्ट हो जायगा कि सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है। वास्तव में सूर्य २७ $\frac{1}{4}$  दिन में अपने अक्ष पर घूम जाता है।

फोटोग्राफ में सूर्य के कलंक बीच में छप्पर के उधड़े छेद-जैसे मालूम होते हैं। परन्तु दूरदर्शक में देखने पर इनका वास्तविक रूप खुलता है। कलंक के चारों ओर सूर्य की सतह इस तरह लगती है जैसे ढेर का ढेर पिघला हुआ सोना रक्खा है। कभी यह पिघला हुआ तत्त्व कलंक के गड्ढे में बहता हुआ जान पड़ता है। कभी-कभी ढेर एक तरफ से बढ़ने लगता है। वह कलंक के ऊपर पुल की तरह छा जाता है। ये पुल ५,००० मील से भी अधिक लम्बे होते हैं। धीरे-धीरे पुल सारे कलंक को ढाँप देता है। इस प्रकार कलंक का अस्तित्व ही मिट जाता है। कलंक कभी-कभी कई सप्ताह, कभी-कभी कई महीनों बने रहते हैं। फिर इन पर पुल बँध जाता है और ये नष्ट हो जाते हैं। सूर्य का एक कलंक १८ महीने तक दिखलाई पड़ता रहा। फिर वह धीरे-धीरे लोप हो गया।

इन कलंकों की भग-दौड़ देखने योग्य है। कभी-कभी दो कलंक पास-पास होते हैं। ये एक साथ वनते दिखलाई पड़ते हैं। फिर ये बड़ी शीघ्रता से बढ़ते जाते हैं और साथ ही एक-दूसरे से हटते जाते हैं। इनके बीच में छोटे-छोटे कलंक बन जाते हैं परन्तु वे शीघ्र समाप्त हो जाते हैं। कभी-कभी इन भागते हुए कलंको की गति ८,००० मील प्रति-दिन देखी गई है। इन कलंको के सम्बन्ध में एक आश्चर्यजनक बात यह मालूम हुई है कि इनकी संख्या नियमानुसार ग्यारह वर्ष के चक्र में घटा-बढ़ा करती है। साढ़े छः वर्ष कलंकों की संख्या कम रहती है, इसके बाद साढ़े चार वर्ष बढ़ जाती है। इस तरह यह घटने-बढ़ने का चक्र, न जाने क्यों, निरन्तर चलता रहता है। परन्तु यह संख्या औसत बसलाती है। वास्तव में सात से लेकर सत्रह वर्ष तक के चक्र पाये जाते हैं। इन कलंकों में एक विचित्र बात और भी पाई जाती है।

ये सूर्य के पिंड की मध्यवर्ती रेखा को केन्द्र बनाकर चलते-फिरते जान पड़ते हैं। ये सूर्य के बहुत उत्तर य दक्षिण भाग में नहीं पाये जाते।

इन कलंको का हमारी पृथ्वी और उसके निवासियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस विषय में वैज्ञानिकों में बड़ा मतभेद है। साधारणतः दुर्भिक्ष, फसल की उपज, बाजार की मदी-महँगी, जल-वर्षा, युद्ध, महामारी और इस प्रकार की अनेक दुर्घटनाओं का सम्बन्ध सूर्य के कलंको से जोड़ दिया जाता है। जहाँ सूर्य पर कोई धब्बा दिखलाई दिया कि समाचारपत्रों ने दुर्घटनाओं के लिए भविष्यवाणी करनी शुरू कर दी। यदि कहीं सचमुच कोई दुर्घटना हो गई तो, फिर क्या कहना ! लोग चिल्लाने लगते हैं—“बस, पकड़ लिया। इस सबका कारण वही बदमाश सूर्य का अमागलिक कलंक है।” आश्चर्य तो यह है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक जन-साधारण की इस चिल्ल-पो में मिल जाते हैं। रूस के एक विज्ञान के प्रोफ़ेसर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि पृथ्वी पर अपराधों के बढ़ने का कारण भी ये ही सूर्य के कलंक हैं। वे लिखते हैं—“जब ये कलंक अधिक दिखाई देते हैं, तब अवश्य कुकर्म बढ़ जाते हैं। जो ऋणाणु उस समय सूर्य से पृथ्वी पर आते हैं वे मनुष्य के मस्तिष्क के इच्छा और मनोवृत्ति-सम्बन्धी केन्द्रों में विकार उत्पन्न कर देते हैं। सचमुच एक प्रकार से मनुष्य अपने कार्यों के लिए कुछ भी उत्तरदायी नहीं।” यह तो बहुत सुन्दर बात हुई। कलंक तो थोड़े-बहुत हमेशा रहते ही हैं। अतः, कर्म करने के बाद कोई भी अपराधी कह सकता है—“भाई, मुझे दंड क्यों देते हो। मेरा इममें क्या हाथ ? इन सूर्य के कलंकों के कारण मैं एकदम अस्थिर चित्त हो गया। इन्हें ही फाँसी दो न !”

परन्तु चाहे मनुष्य के मस्तिष्क पर सूर्य के कलंकों का कोई प्रभाव

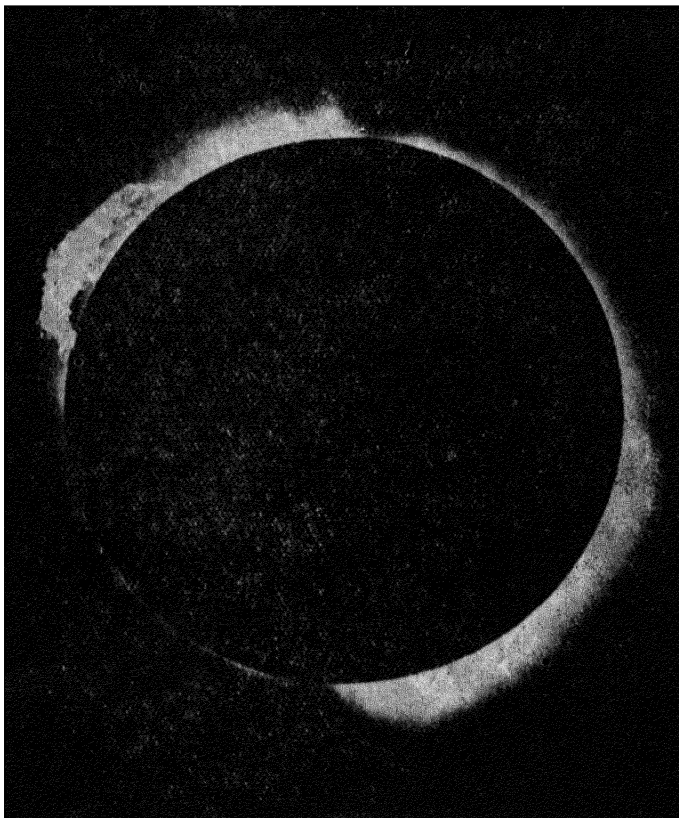
पड़े या न पड़े, पृथ्वी की दो वस्तुओं पर इन कलंकों का प्रभाव पड़ता दीखता है।

जब सूर्य पर कलंकों की संख्या अधिक दिखलाई पड़ती है उस समय ध्रुवदर्शक यंत्र की सुई की दिशा अनियमित रूप से बदलने लगती है। साधारणतः सुई बहुत कुछ उत्तर-दक्षिण रहती है। परन्तु यदि उस समय सूर्य पर कलंक अधिक संख्या में उग आये तो फिर इस निर्देशक यंत्र की सुई किसी निश्चित दिशा में ठहर ही नहीं सकेगी और नाविक को दिशा-भ्रम हो जायगा। इस यंत्र की सुई के गुण में अन्तर उसी समय पडा करता है जब उसके पास कोई चुम्बक रख दिया जाय। तब वह उत्तर-पश्चिम की दिशा छोड़ देती है। अतः, वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इसी तरह की परिस्थिति कलकों के अधिक संख्या में उत्पन्न होने से प्रकट होती जान पड़ती है। वे कहते हैं—इस समय “चुम्बकीय आँधी चल रही है।”

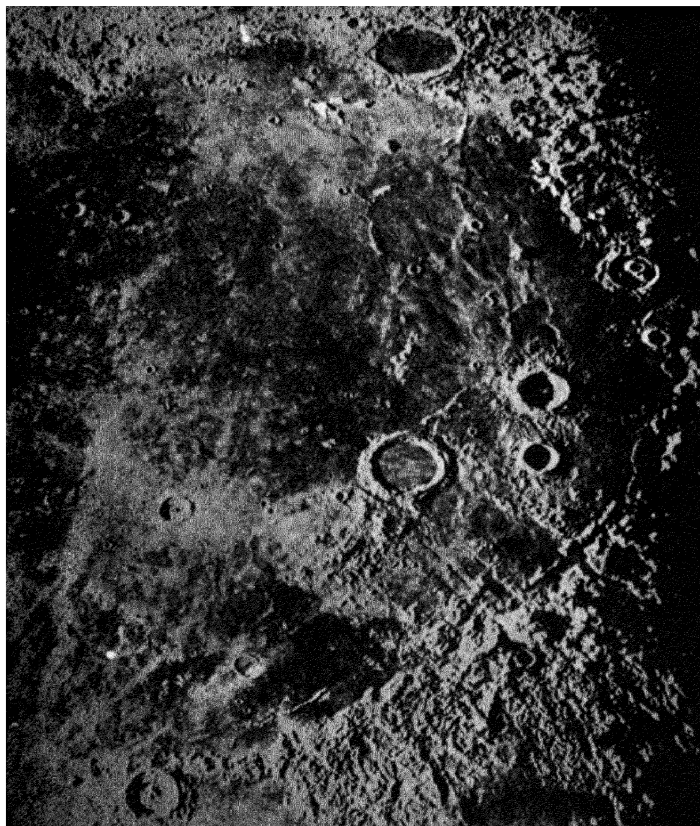
दूसरा प्रभाव “उत्तरी प्रकाश” पर पड़ता है। उत्तर और दक्षिण ध्रुवों के पास रात के समय एक विशेष प्रकार का प्रकाश दिखलाई पड़ा करता है जो क्षण-क्षण में सैकड़ों प्रकार के रूप-रंग बदला करता है। जब कभी चुम्बकीय आँधी उठती है तो यह प्रकाश बहुत ही अधिक उज्ज्वल हो जाता है और इसकी परिधि भी बढ़ जाती है। उस समय आकाश में बिजली बहती हुई जान पड़ती है और एक स्थान से दूसरे स्थान को तार भेजना कठिन हो जाता है।

## १— सूर्य-ग्रहण

सर नार्मन लॉकमेर ने एक स्थान पर सूर्य-ग्रहण का वर्णन करते हुए लिखा है—



२६ मई १९१६ के दिन पड़नेवाले पूर्ण सूर्यग्रहण में सूर्य का मुकुट—पृष्ठ २५



चन्द्रमा के धरातल के गढ़े—पृष्ठ ४१

“सूर्य-ग्रहण के समय प्रकृति में एक नया सौंदर्य गोचर होने लगता है। जान पड़ता है कि हम किसी नये ही लोक में आगये। यह लोक भयानक दृश्यों और रोमाचक वातावरण से भरा हुआ लगता है। उममे नीरवता और विषाद का शासन है। मनुष्य मौन हो जाते हैं। पशु-पक्षी बोलना बन्द कर देते हैं। बादल ऐसे लगते हैं जैसे हमारा उनसे कभी परिचय हुआ ही नहीं हो; उन्हें देखकर हृदय अज्ञात आशंका से अकुल हो जाता है। समुद्र शान्त, रक्तवर्ण हो जाता है।”

इसी प्रकार एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने सर्वग्रहण के सम्बन्ध में लिखा है—

“जब सूर्य का एक पतला धागा रह गया और इससे पृथ्वी पर मंद प्रकाश आने लगा तो सब वस्तुओं में एक तरह की खलबली मच गई। प्रत्येक प्राणी के मन में न जाने क्यों यह इच्छा उठी कि वह अपने पड़ोसी से बात करे। इस समय लोगों के परस्पर बात करने से ऐसा कलरव उठा जैसे वह जनसमुदाय नहीं हो, वरन् आंधी के बाद का समुद्र हो। ज्यों-ज्यों ग्रहण बढ़ता गया, यह कलरव अधिक ऊँचा होता गया। अन्त में सूर्य अदृश्य हो गया। इस समय पूरा सन्नाटा था। आकाश का दृश्य इतना सुन्दर था कि लोग उसे देखने लगे, बात कौन करता? चिड़ियों का गाना बन्द हो गया। आकाश में पूर्ण निस्तब्धता थी।”

जब सभ्यता का विकास अधिक नहीं हुआ था और मनुष्य ग्रहणों के कारण को नहीं जानता था, न उनके विषय में कोई भविष्यवाणी कर सकता था, तब उसके हृदय में उनके प्रति बड़ा भय था। सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण होते तो उसका मन भय और आशंका से भर जाता। कुछ लोग सोचते थे, दुर्भिक्ष पड़ेगा, महामारी होगी, युद्ध होगा

अथवा सम्भव है, प्रलय हो जाय । इसी लिए प्राचीन पुस्तकों में अनेक ग्रहणों के वर्णन मिलते हैं।

ग्रहण का सबसे प्राचीन उल्लेख चीन देश के ग्रन्थों में है। यह ग्रहण २२ अक्टूबर २१३७ ई० पू० को लगा था। प्रसिद्ध ग्रन्थ शू-चिंग में महाराज चुंगक्यांग के सम्बन्ध में इसका उल्लेख आया है। कथा इस प्रकार है। ग्रहणों के विषय में भविष्यवाणी करने का काम दो राज-ज्योतिषियों—“ही” और “हो”—को सौंपा गया था। परन्तु गणित का अध्ययन करते रहने के बदले वे शराब पीकर मस्त रहने लगे। इस वर्ष ग्रहण के विषय में कोई भविष्यवाणी उन्होंने नहीं की। अतः जब अकस्मात् ग्रहण लगा तो जनता को बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा। भारतीयों की तरह चीन देश के निवासी भी ग्रहण के समय अनेक धर्मकृत्य करते हैं। वे न हो सके। इस प्रकार धर्म की बड़ी हानि हुई। शू-चिंग में लिखा है कि रुष्ट होकर महाराज ने दोनों ज्योतिषियों का सिर धड़ से अलग करवा दिया।

बैबिलोनिया देश में ७४७ ई० पू० से ग्रहणों का हिसाब रक्खा जाना शुरू हुआ। इन ग्रहणों के अध्ययन से न केवल ज्योतिष-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक शोधों में सहायता मिली है, वरन् इतिहास की प्रसिद्ध घटनाओं की तिथियों की जाँच में भी इनसे सहायता मिली है।

प्राचीन सूर्य-ग्रहणों में सबसे प्रसिद्ध २८ मई ५८५ ई० पू० को लगा था। यूनान के लेखक हेरोडोटस् ने उसका वर्णन किया है। वास्तव में दो प्राचीन जातियों का इतिहास इस ग्रह से सम्बन्धित है। यह ग्रहण एक युद्ध के बीच में पड़ गया था। यह युद्ध मीड-जाति और लिडिया-निवासियों के बीच में हो रहा था। जब युद्ध घमासान पर पहुँच गया तब ग्रहण पड़ने लगा। इस पर दोनों ओर की सेनाओं ने समझा कि

उनके युद्ध से देवता अप्रसन्न हैं। युद्ध रोक दिया गया और उसी समय संधि कर ली गई। इसी प्रकार की, परन्तु फल में इसके विपरीत, एक घटना का वर्णन प्लुटार्क ने “पेरिकिल्स की जीवनी” में लिखा है। पेरिकिल्स अपनी नाविकसेना के साथ युद्ध के लिए बढ़ने ही वाला था कि सूर्य-ग्रहण लगा। मल्लाह लोग आश्चर्य और द्विविधा में पड़ गये। परन्तु पेरिकिल्स असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसने कहा—“यह तो कोई अप-शकुन नहीं है। जिस तरह इस चादर से मैं अपना मुख ढक सकता हूँ उसी तरह कोई बड़ी वस्तु सूर्य को ढक सकती है।” इस पर नाविक शान्त होकर अपने काम में लग गये।

सूर्य-ग्रहण क्यों पड़ता है? इस विषय में सर्वसाधारण कुछ भी नहीं जानते। हमारे यहाँ तो राहु की कहानी प्रसिद्ध है। राहु सूर्य को खाने दौड़ता है, कभी उसका एक अंग निगल जाता है, तब उस अंग का ग्रहण पड़ जाता है। कभी राहु सारे सूर्य को निगल जाता है तब सर्व-ग्रहण पड़ता है। ग्रहण के समय अपने प्रिय देवता सूर्य को राहु-द्वारा कष्ट मिलते देखकर लोग ईश्वर का स्मरण करने लगते हैं। कष्ट-निवारण के लिए धर्मार्थ दान दिया करते हैं। जब उग्रह हो जाता है और सूर्य निकलने लगता है तो स्नान करते हैं। साधारणतः ग्रहण के बाद बड़ा पर्व लगता है।

परन्तु विज्ञान के अध्ययन से यह पता चलता है कि ग्रहण का कारण यह है कि सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी के पिंड घूमते-घूमते एक ही रेखा में आ जाते हैं। सूर्य से ९,३०,००,००० मील की दूरी पर पृथ्वी उसकी परिक्रमा कर रही है और पृथ्वी से २,४०,००० मील दूर चाँद उसकी परिक्रमा कर रहा है। घूमते-घूमते इस प्रकार की परिस्थिति आ जाना असम्भव नहीं है जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाये या

पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाये। दोनों परिस्थितियों में सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा अथवा पृथ्वी से अवरुद्ध हो जाता है। पहली दशा में पृथ्वी पर से सूर्य के दर्शन नहीं होते, सूर्य-ग्रहण लग जाता है; दूसरी दशा में चन्द्रमा पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता और हम पृथ्वी से उसे देख नहीं सकते; अतः, चन्द्र-ग्रहण लग जाता है।

सूर्य और चन्द्रमा केवल अमावस्या के दिन ही एक दिशा में रहते हैं। इसी लिए सूर्य-ग्रहण हमेशा अमावस्या के दिन पड़ता है। पूर्णिमा के दिन सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी की विपरीत दिशाओं में होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पृथ्वी सूर्य के प्रकाश को चन्द्रमा पर पड़ने नहीं देती। फल यह होता है, कि चन्द्रमा में चमक नहीं रह जाती। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि चन्द्रमा अपने प्रकाश से नहीं चमकता। जब उस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तभी वह इस रूप में हमें दिखलाई देता है। पृथ्वी के बीच में आने पर ये किरणें चन्द्रमा के धरातल पर नहीं पड़ सकती। वह अंधकारपूर्ण बना रहता है। इस प्रकार चन्द्रग्रहण सदा पूर्णिमा के दिन लगा करते हैं। ऐसी परिस्थिति किसी दूसरे दिन उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

परन्तु यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है—“ठीक; परन्तु फिर प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण क्यों नहीं पड़ता और प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्रमा में ग्रहण क्यों नहीं लगता?”

हाँ, बात ठीक है। यदि सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की कक्षाएँ एक ही समतल में होती, अर्थात् यदि ये तीनों एक ही समतल पर परिक्रमा कर रहे होते तो अवश्य ही ऐसा होता। प्रत्येक अमावस्या के दिन सूर्य-ग्रहण लग जाता और प्रत्येक पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण। परन्तु बात ऐसी नहीं है। चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी की कक्षा से  $5^\circ$  झुकी हुई है।

इस प्रकार चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी की कक्षा को दो स्थानों पर काटती है। यदि इन स्थानों पर चन्द्रमा हो और पृथ्वी उसके बिल्कुल सामने पड़े, उसी समय कोई ग्रहण सम्भव है। परन्तु यह बात सुगमता-पूर्वक नहीं हो पाती। पृथ्वी स्वयं सूर्य के चारों ओर घूमती है और जब चन्द्रमा उसकी कक्षा को काटता है तो वह सदा ही सामने नहीं पड़ती। चन्द्रमा अपनी कक्षा पर लगभग २७ दिन २ घंटे में चक्कर लगा लेता है। परन्तु पृथ्वी की अपनी परिक्रमा के कारण दो अमावस्याओं में २९½ दिन का अन्तर रहता है। इसका फल यह होता है कि चन्द्रमा पृथ्वी की कक्षा को एक ही स्थान पर नहीं काटता। अमावस्या और पूर्णिमा को कभी वह एक स्थान पर होता है, कभी उससे हटा हुआ। ग्रहण उसी समय पड़ सकते हैं जब चन्द्रमा लगभग उन बिन्दुओं के पान हो जहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा की कक्षाएँ परस्पर कटती हैं।

सर्वग्रहण का दृश्य रमणीय दृश्यों में सबसे अधिक चित्ताकर्षक है। मनुष्य के हृदय पर यह दृश्य एक अद्भुत प्रभाव डालता है। दस मिनट पहले अँधेरा होने लगता है। सूर्य के प्रकाश का रंग बदल जाता है और आकाश और पृथ्वी दोनों उस रंग में रँगकर विचित्र-से हो जाते हैं। तापक्रम इतना घट जाता है कि ठंडक लगने लगती है। जैसे-जैसे सूर्य का प्रकाश क्षीण होता जाता है, वैसे-वैसे फूल अपनी पंखुरियाँ बन्द करने लगते हैं, मानो रात हो गई हो। पशु-पक्षी भी सर्वग्रहण के प्रभाव में अछूते नहीं रहते। चिमगादड़े अपने घोंसलों से निकलकर पंख फड़फड़ाती हुई इधर-उधर उड़ने लगती हैं। अन्य पक्षी, जहाँ थे, वही दुबक-कर सहमे-से बैठे रहते हैं। कुछ गिरते-पड़ते अपने घोंसलों की ओर दौड़ते हैं। पालतू पशु भयभीत होकर रस्सी तुड़ाने लगते हैं। मवेशी पंक्तिबद्ध हो जाते हैं; वे अपनी सींग आकाश में उठाकर एक घेरे में खड़े

हो जाते हैं जैसे उन्हे किसी हिंसक पशु के आक्रमण की आशंका है। मनुष्य भी इस प्रभाव से त्रिच नहीं सकता। एक विचित्र प्रकार की अशान्ति उसके हृदय में खलबली मचाये रहती है।

चन्द्रमा की छाया धीरे-धीरे सूर्य को ढकती चली जाती है। सर्वग्रास से क्षण भर पहले ऐसा लगता है कि सूर्य पर आँधी उठ रही हो। चन्द्रमा की छाया बड़े डरावने वेग से सूर्य को निगलने दौड़ती है। जब सूर्य की एक पतली-सी धनुषाकार धारी रह जाती है तो सारा वातावरण क्षुब्ध और भयोत्पादक हो जाता है। परन्तु यह क्षीण रेखा एक-दम मिट नहीं जाती। ऐसा लगता है जैसे यह क्षीण रेखा टूटकर बहुत-सी मणियों में बँट गई हो।

ये मनके कैसे ? चन्द्रमा के सम्बन्ध में लिखते हुए हमने बताया है कि उस पर बड़े-बड़े पहाड़ हैं। जब चन्द्रमा सूर्य के किनारे को ढकने के लिए बढ़ता है तो स्वयं उसका रहस्य खुल जाता है। पहाड़-पहाड़ियों की वजह से उसका किनारा गोल नहीं रहता। वह टूटा-फूटा दिखलाई देता है जैसे उसमें दाँत निकल आये हों। इस प्रकार क्षण भर चन्द्रमा का किनारा सूर्य के किनारे को पूरा-पूरा ढक नहीं पाता। दाँतों के बीच में से प्रकाश छनने लगता है। इसी से सूर्य की क्षीण कला टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और मनको के रूप में हमें दिखलाई पड़ती है। इस समय लगभग सारा सूर्य ढका होता है और अधकार का साम्राज्य अनंत दिगंत तक फैल जाता है। इसलिए सूर्य की क्षीण कला के ये टुकड़े, स्वयं अत्यन्त प्रकाशमय होने के कारण, अपने असल आकार से बड़े और गोलाकार दिखलाई देते हैं।

सहसा चन्द्रमा की छाया काँपने लगती और एकाएक अँधेरा हो जाता है। सर्वग्रहण हो गया। दो-चार सेकेंड तक अन्धकार इतना अधिक जान

पड़ता है कि हृदय भय से काँप जाता है; कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ना; न आकाश सूझता है, न पृथ्वी। जैसे राग हो गई हो। चमकीले नक्षत्र दिखलाई पड़ने लगते हैं। जब आँखें कुछ स्वस्थ होती हैं, जो आकाश में चन्द्रमा दिखलाई देता है, वह बिलकुल काला है। परन्तु लाल रंग का एक घेरा उसके चारों ओर है। यह वास्तव में सूर्य का प्रकाशमंडल है। चन्द्रमा इतना बड़ा नहीं है कि इतने दूर होने पर भी सूर्य और उसके प्रकाशमंडल को पूरा-पूरा ढक सके। इस प्रकाशमंडल से अग्नि की चमकीली जिह्वायें निकलती दिखलाई पड़ती हैं। लाल प्रकाशमंडल के बाहर, ज़ाँदी की तरह चमकता हुआ एक मंडल है। इसे “सूर्य का मुकुट” या कॉरोना कहते हैं। इसके सम्बन्ध में हम पहले लिख आये हैं।

इस समय के प्राकृतिक वैभव का वर्णन करना सचमुच कठिन है। चन्द्रमंडल स्याही से भी काला रहता है। इसके चारों ओर मोती-से भी उज्ज्वल प्रकाश का मुकुट है। काले चन्द्रमंडल के पीछे से रक्त-ज्वालायें लपकती हुई साफ दिखलाई पड़ती हैं। ये ज्वालायें चन्द्रमंडल के घेरे से सटे हुए लाल रंग के वर्णमंडल से निकलती हैं। विवर्ण चन्द्रमंडल की तुलना में इस वर्णमंडल का तेज और भी निखर उठता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे लाल अँगूठी में धुंधला काला नग जड़ा हो।

इसके बाद सूर्य निकलने लगता है। इसे “उग्रह” कहते हैं। पहले सूर्य के नीचे का वायुमंडल सफ़ेद इसपात के रंग का हो जाता है। तब एकाएक इतना प्रकाश हो जाता है कि आँखें चौधिया जाती हैं। प्रकाशमंडल निकल आया है। उसकी एक कोर सामने आ गई है। धीरे-धीरे सारा सूर्य निकल आता है। सूर्य का जो भाग पहले निकलता है वह अपने आकार की अपेक्षा बहुत बड़ा लगता है। उस समय सूर्य हीरे

की अँगूठी के समान दिखलाई पड़ता है। “सूर्य का मुकुट” केवल एक-आध मिनट तक दिखलाई पड़ता है। इसके बाद वह छिप जाता है।

ज्योतिषियों के लिए सर्वसूर्यग्रहण बहुत महत्वपूर्ण है। साधारणतः कारोना इसी समय दिखलाई पड़ता है और उसका अध्ययन इसी समय किया जा सकता है। इसी समय चन्द्रमा की छाया सूर्य पर पड़ती है और उसकी गति के सम्बन्ध में जो गणनाये की गई हैं उनकी सत्यता की परीक्षा की जा सकती है। सूर्य की लपटो और उसके प्रकाशमंडल के वर्ण-चित्र लेना भी इसी समय सम्भव होता है। ये वर्ण-चित्र इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि इनके द्वारा हमें यह पता चलता है कि सूर्य पर कौन-कौन तत्व हैं। इन्हीं कारणों से यह अवसर ज्योतिषियों के लिए किसी बड़े त्यौहार से कम नहीं होता और इस त्यौहार को कैसे मनाये—इसी सोच में उन्हें महीनों लग जाते हैं। वास्तव में सर्वसूर्यग्रहण के त्यौहार मनाने की तैयारी वर्षों पहले होने लगती है। पृथ्वी के किस भाग से सर्वग्रहण अच्छी तरह दिखाई देगा? कहाँ का वायुमंडल उस समय अत्यन्त स्वच्छ होगा? कौन यंत्र काम आयेंगे? ज्योतिष के अनेक सिद्धान्तों की जाँच इसी समय होती है। लाखों रुपये खर्च करके ज्योतिषी उपयुक्त स्थान पर पहुँचता है और सर्वग्रहण के समय फ़ोटो लेने में इतना व्यस्त होता है कि प्रकृति के सौंदर्य का निरीक्षण करने के लिए बेचारे को समय ही नहीं मिलता। उस पर भी बहुधा ठीक समय पर सूर्य पर बदली आ जाने अथवा वायुमंडल की गड़बड़ी के कारण उसे बहुत बार असफलता का सामना करना पड़ता है।

सर्वसूर्यग्रहण सदैव किसी एक स्थान से नहीं दिखलाई पड़ता। यदि गणित-द्वारा हिसाब लगाया जाये तो यह पता लगेगा कि पृथ्वी के

प्रत्येक स्थान से ३६० वर्षों में एक ही बार सर्वसूर्यग्रहण देखा जा सकेगा। बहुधा सर्वग्रहणवाला मार्ग अटलांटिक अथवा प्रशांत महासागर में पड़ता है। कभी-कभी सर्वग्रहण केवल कुछ दूर के द्वीपों से ही दिखलाई पड़ सकेगा अथवा ऐसे स्थानों पर जो मनुष्य के लिए सुगम नहीं हैं। वस्तुतः आकाश के आश्चर्यों का अध्ययन करने के लिए ज्योतिषियों को बड़ा तप करना पड़ता है।

यह बात प्राचीन ज्योतिषियों ने ही खोज ली थी कि प्रत्येक १८ वर्ष ११ दिन बाद एक-जैसे ग्रहण पड़ते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि ग्रहण-चक्र की अवधि १८ वर्ष ११ दिन है। प्रत्येक ग्रहण-चक्र में बहुधा ७१ ग्रहण पड़ा करते हैं।

## २—चन्द्रग्रहण

सूर्यग्रहण के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए हमने चन्द्रग्रहण के कारण के सम्बन्ध में पीछे लिख दिया है। प्रत्येक वर्ष २-३ चन्द्रग्रहण पड़ा करते हैं।

पूर्णिमा के दिन पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है। अपनी कक्षाओं के भुकाव के कारण सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी सदैव समान रेखा में नहीं आते; परन्तु जब ऐसा हो जाता है तो चन्द्रग्रहण पड़ जाता है—पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और वह सम्पूर्ण अथवा कुछ अंश में हमारी दृष्टि से छिप जाता है।

पृथ्वी की छाया सूच्याकार होती है। यह छाया लगभग ८,५९,००० मील लम्बी होती है। जिस स्थान पर सूर्य चक्कर लगाता है, वहाँ इस छाया का व्यास ५,७०० मील है। साधारणतः प्रत्येक पूर्णिमा के दिन, कक्षा तिरछी रहने के कारण, चन्द्रमा इस छाया के नीचे-ऊपर होकर

निकल जाता है और ग्रहण नहीं पड़ता परन्तु जब वह इस छाया में पड़ जाता है तो ग्रहण लग जाता है। यदि चन्द्रमा इस छाया में सम्पूर्ण रूप से डूब गया तो सर्वग्रहण पड़ता है, यदि उसका केवल एक अंश डूबा तो आंशिक ग्रहण।

चन्द्रग्रहण का दृश्य भी बहुत रोचक होता है। जब चन्द्रग्रहण पड़ने लगता है तो पहले उसके पूर्वी किनारे का कुछ भाग धुंधला हो जाता है और फिर क्रमशः अदृश्य। जैसे-जैसे चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में अधिक-अधिक आता जाता है, वैसे-वैसे चन्द्रमा के अधिक भाग का लोप होता जाता है। जब सर्वग्रहण हो जाता है तो चन्द्रमा मटमैले लाल रंग का दिखलाई पड़ने लगता है। इस लाल रंग का वही कारण है जो गोधूलि के लाल होने का। हमारा वायुमंडल हरे और नीले रंग की किरणों को सोख लेता है; वह केवल लाल किरणों को प्रतिदीप्त करता है। ये किरणें पृथ्वी के किनारों पर मुड़कर चन्द्रमा को छू लेती हैं यद्यपि वह इस समय पृथ्वी की छाया में रहता है। जैसे-जैसे ग्रहण का समय समाप्त होता जाता है, चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में से बाहर निकलता जाता है और 'उग्रह' होने लगता है। सर्वग्रहण का समय २ घंटे से अधिक नहीं होता और चन्द्रग्रहण में, प्रारम्भ से अन्त तक लगभग ४ घंटे लगते हैं।

सूर्यग्रहण की तरह चन्द्रग्रहण ज्योतिषी के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है, अतः वह उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेता परन्तु भारत की धर्मप्राण जनता चन्द्रमा को राहु से भ्रसा जानकर उग्रह होने के बाद स्नानपर्व मनाती है।

## चन्द्रमा

यह निश्चित है कि प्रागैतिहासिक काल में भी लोग चन्द्रमा की कलाओं में परिचित थे और यह जानते थे कि प्रत्येक कला निश्चित समय पर उदय होती है। इसी ज्ञान के सहारे, बाद में, चन्द्रवर्ष और चन्द्रतिथि की कल्पना हुई। वर्ष को बारह महीनों में बाँटने की प्रथा चली।

परन्तु चन्द्रमा के विषय में मनुष्य के ज्ञान में उन्नति उसी समय हुई जब १६०७ में गैलीलियो ने दूरदर्शक का आविष्कार किया और उसका मुख चन्द्रमा की ओर घुमाया। तब मनुष्य ने पहली बार जाना कि जिसे उसने 'चन्द्रमा का कलंक' माना है, जिसे कभी किसी ने बुढ़िया कहा, किसी ने हिरण, वे वास्तव में पहाड़ और घाटियाँ हैं। उस दिन से अब तक चन्द्रमा के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान का बराबर विस्तार होता गया है। जैसे-जैसे नये-नये अधिक अच्छे दूरदर्शक बनते गये, वैसे-वैसे हम मानो चन्द्रमा के सन्निकट आते गये। आज हम संसार के सबसे बड़े दूरदर्शक के सहारे से उसे इस तरह देख लेते हैं जैसे हम उसे कोरी आँखों से पचास मील दूर देख रहे हों। यदि चन्द्रमा पर जैप्लेन जैसा कोई विमान उड़ रहा हो, तो हम उसे साफ़ देख लेंगे।

इस महाकाश में चन्द्रमा हमारा सबसे निकट का पड़ोसी है। यही नहीं वह बड़ी श्रद्धा से हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है और सूर्य के चारों ओर की लम्बी यात्रा में बराबर उसका साथ देता है। पृथ्वी पर उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव भी पड़ता है। उसी के कारण हमारे समुद्रों में ज्वार-भाटे उठा करते हैं। संक्षेप में, चन्द्रमा से हम पृथ्वीनिवासियों का गहरा सम्बन्ध है।

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर वृत्त के रूप में नहीं, वरन् दीर्घ-वृत्त के रूप में, घूम रहा है। इससे पृथ्वी से इसकी दूरी सदा एक नहीं रहती। मध्यम दूरी २,४०,००० मील के लगभग है। यदि हम पृथ्वी से एक तेज वायुयान लेकर चले और ३०० मील प्रतिघंटा के हिसाब से लगातार उड़ते रहें तो भी चन्द्रमा तक पहुँचने में हमें १ महीने से अधिक समय लगेगा।

चन्द्रमा का पिंड सूर्य के बराबर जान पड़ता है, परन्तु यह भ्रम है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा हमारे बिलकुल पास है सूर्य कहीं दूर है। केवल अधिक पास होने के कारण चन्द्रमा सूर्य के बराबर बड़ा दिखलाई पड़ता है। वस्तुतः दोनों के अनुपातों को निकालने पर चकित रह जाना पड़ता है। पृथ्वी का व्यास ८,००० मील है, चन्द्रमा का व्यास इसका चौथाई है। अर्थात् लगभग २,१६० मील। हमारी पृथ्वी में जितना पदार्थ है उतने से ४९ चन्द्रमा बन सकते हैं। यदि तराजू के एक पलड़े पर हमारी पृथ्वी हो, तो दूसरे पलड़े को उसके बराबर लाने के लिए हमें उस पर ८१ चन्द्रमा धरने पड़ेंगे।

पिंड के भार और उसके आकर्षण का बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। पिंड जितना अधिक भारी होता है, उतनी अधिक शक्ति से वह वस्तुओं को अपने केन्द्र की ओर खींचता है। किसी भी पिंड पर किसी वस्तु का वजन इसलिए होता है कि वह वस्तु एक विशेष शक्ति से उस पिंड के केन्द्र की ओर खिंचती है। यदि यह शक्ति किसी प्रकार क्षीण हो जाये तो उसी वस्तु का वजन कम हो जायगा, परन्तु उसमें तत्त्व वही रहेगा। हमारी पृथ्वी की आकर्षणशक्ति यदि  $\frac{1}{4}$  रह जाय तो जो चीज़ आज एक मन भारी हो, कल वह तौलने पर पौने सात सेर से कम

अंश है। अतः जो चीज़ पृथ्वी पर एक मन भारी लगती है, वह चन्द्रमा पर पौने सात सेर से कम लगेगी

चन्द्रमा के सम्बन्ध में मनुष्य को जो बातें लाखों वर्षों से मालूम हैं, वह यह है कि चन्द्रमा घटता-बढ़ता रहता है। चन्द्रमा के घटते-बढ़ते रूपों का नाम 'कला' है। चन्द्रमा की कलाओं से प्राचीन ज्योतिषी भली भाँति परिचित थे।

अब हम इन्हीं कलाओं के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

हमें दो बातें ध्यान में रख लेनी चाहिए। पहली यह कि चन्द्रमा कुछ-कुछ गेद-जैसा गोल है; चपटा नहीं है। दूसरी बात यह कि चन्द्रमा सूर्य की तरह गरम नहीं है, अतः, वह अपने प्रकाश से नहीं चमकता। जिन भागों पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, केवल वही चमकते दिखाई पड़ते हैं। यदि हम एक गेद हाथ में ले ले और उसे लैम्प के सामने रखें तो उसका आधा भाग प्रकाशित होगा, आधा अधकार में रहेगा। चन्द्रमा के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक है। इस गेद को हम चाहे जिस तरह रखें, उसका आधा भाग ही प्रकाशित होगा। इससे स्पष्ट है कि हम चन्द्रमा की तुलना किसी ऐसे गेद से कर सकते हैं जिसका आधा भाग सफ़ेद रँगा गया हो, आधा काला। इस तुलना में एक बात और सहायता देगी। वह बात यह है कि चन्द्रमा चाहे जिस दशा में हो, उसका एक ही विशेष भाग प्रकाशित रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चन्द्रमा से रँगे हुए गेद की तुलना सोलह आने पूरी उतर रही है। अब हम गेद को चन्द्रमा मान लेते हैं और स्वयं अपने को पृथ्वी पर खड़ा हुआ प्राणी। इसके बाद हम गेद को अपने सामने इस तरह रखते हैं कि उसका सफ़ेद भाग हमारे सामने रहता है। वह हमें पूर्ण-चन्द्र की भाँति दिखलाई देगा। अब यदि हम गेद की दिशा नहीं बदलें

और उसे अपने सिर के ऊपर गोल चक्कर के रूप में घुमाये तो हमें चन्द्रमा की अनेक कलायें उदय-अस्त होती दिखलाई पड़ेगी। किसी स्थिति से गेंद पूर्णकला-सा, किसी से अर्धकला-सा, किसी से क्षीणकला-सा दिखलाई पड़ेगा।

जब चन्द्रमा सूर्य की उसी दिशा में होता है जिस दिशा में पृथ्वी है तो उसके पृष्ठ-भाग पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है। जो भाग हमारे सम्मुख रहता है, वह अँधेरा रहता है। फल यह होता है कि हमें चन्द्रमा दिखाई नहीं पड़ता। यह ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रमा कहीं चला नहीं जाता, वह केवल हमें दिखाई नहीं पड़ता। ज्योतिष-शास्त्र की परिभाषा में इस अवस्था को “अमावस्या” कहते हैं। दो रातों बाद चन्द्रमा इतना काफ़ी चल लेता है कि हमें सूर्य से प्रकाशित उसका कुछ थोड़ा भाग दिखलाई पड़ जाता है। इसी अनुपात में थोड़ा अंधकार-पूर्ण भाग हमारे सामने से हट जाता है। उस समय आकाश में चन्द्रमा हेंसिये के रूप में देखा जा सकता है। यह “द्वितीया” की स्थिति है। एक सप्ताह पश्चात् प्रकाशित भाग का लगभग आधा अंश हमें दिखलाई दे जाता है। वह “अर्द्धचन्द्र” के रूप में हमारे सामने आता है। इसके एक सप्ताह बाद चन्द्रमा सूर्य से पृथ्वी की विपरीत दिशा में चला जाता और तब इसका सारा प्रकाशित भाग हमारी आँखों के सामने आता है। चन्द्रमा की इस अवस्था को “पूर्णिमा” कहते हैं। इसके उपरांत चन्द्रमा की कलायें घटने लगती हैं। एक सप्ताह बाद फिर अर्ध-चन्द्र के दर्शन होते हैं और उसके एक सप्ताह बीत जाने पर अमावस्या हो जाती है। “द्वितीया” के दिन फिर चन्द्रमा के दर्शन होते हैं। इस प्रकार चक्र चलता रहता है।

साधारणतः हम यह समझते हैं कि केवल चन्द्रमा ही चल रहा

है। बात सच है। सचमुच, चन्द्रमा हमारी पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है। परन्तु यह सत्य आधा है। दूसरा आधा सत्य यह है कि पृथ्वी स्वयं अपनी धुरी पर घूमती है और इससे आकाश का प्रत्येक पिंड घूमता हुआ दिखाई देगा। यदि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा नहीं करता तो भी पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण चलता हुआ दिखाई पड़ता। इस तरह हम देखते हैं कि वास्तव में चन्द्रमा की गति दो प्रकार की गतियों का सम्मिश्रण है। पृथ्वी के अपने परिमाण के कारण ही चन्द्रमा हमें पूर्व में उगता और पश्चिम में डूबता दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा की स्वयं अपनी गति का परिणाम यह निकलता है कि चन्द्रमा का स्थान बराबर बदला करता है। अभी आज वह तारों के एक समूह में घूम रहा है, अभी कल दूसरे समूह में पहुँच गया। उसका स्थान प्रतिदिन पहले दिन की अपेक्षा कुछ पूर्व की ओर रहता है। यदि हम चन्द्रमा को आज किसी विशेष तारा-समूह के पास देखें तो कल वह उस समूह से  $13^{\circ}$  पूर्व में होगा। इसका फल यह होता है कि चन्द्रमा प्रत्येक दिन ५० मिनट की देर करके आकाश में उगता है।

अमावस्या का चन्द्रमा सूर्य की उसी ओर होता है, जिस ओर पृथ्वी है। सूर्योदय के समय वह उदय होता है और ठीक सूर्यास्त के समय डूब जाता है। फल यह होता है कि हम उसे देख नहीं पाते। दूसरे दिन वह सूर्योदय के एक घंटे बाद उगता है और सूर्यास्त के एक घंटे बाद डूबता है, अतः वह सूर्यास्त के एक घंटे बाद तक पश्चिमी आकाश में दिखाई पड़ता है। उसका रूप धनुषाकार होता है। प्रत्येक दिन चन्द्रमा की कला पिछले दिन की कला से कुछ बढ़ जाती है। अन्त में अर्धचन्द्र और पूर्णचन्द्र के दर्शन होते हैं। साथ ही, प्रत्येक दिन वह पिछले दिन से अधिक देर में

उगता है और प्रत्येक रात चाँदनी पिछली रात की अपेक्षा अधिक देर तक रहती है ।

पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा पूर्व की दिशा में उस समय उदय होता है जब सूर्य पश्चिम की दिशा में डूब रहा होता है । अतः, चाँदनी रात भर रहती है । पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा की कलाये घटने लगती हैं, एक सप्ताह बाद वह अर्धचन्द्र रह जाता है । साथ ही, वह प्रत्येक दिन पिछले दिन की अपेक्षा बराबर देर करके उगता है । कृष्णपक्ष का अर्ध-चन्द्र लगभग आधी रात के समय उदय होता है । इसके उपरान्त उसकी कलायें और क्षीण होती जाती हैं । उसका उदय पिछले दिन की अपेक्षा देर में होता है । अमावस्या आ जाती है । इस दिन चन्द्रोदय और सूर्योदय साथ-साथ होते हैं; इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा एक ही समय अस्त होते हैं । अतः चन्द्रमा को देखना असम्भव होता है । यह चक्र चलता रहता है ।

पृथ्वी का चक्कर लगाने में चन्द्रमा को २७ दिन ७ घंटे लगते हैं, परन्तु पृथ्वी स्वयं सूर्य की परिक्रमा करती है । इससे समय कुछ अधिक जान पड़ता है । दो चन्द्रोदयों में २९ दिन १२ घंटे का अन्तर रहता है ।

यह बात सुनकर आपको कदाचित् आश्चर्य होगा कि हमारी पृथ्वी की तरह चन्द्रमा भी अपनी धुरी पर घूम रहा है । परन्तु अपनी धुरी पर एक बार परिभ्रमण करने में चन्द्रमा को उतना ही समय लगता है जितना एक बार पृथ्वी की परिक्रमा में । इसका फल यह होता है कि चन्द्रमा का एक ही मुख हमारे सामने आता है । दूसरा मुख कैसा है, इस सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं कह सकते । परन्तु हमारा अनुमान है कि वह भी इसी मुख की तरह होगा । इस अनुमान के कुछ कारण भी हैं । वस्तुतः जिस मुख को पूर्णिमा के दिन हम देखते हैं, वह चन्द्रमा के आधे

भाग से अधिक होता है। उससे हमें चन्द्रमा के धरातल का ५९ प्रतिशत अंश दिखलाई दे जाता है। केवल ४१ प्रतिशत अंश छिपा रहता है। दूरदर्शक में इस आधे से अधिकवाले अंश और हमें दिखलाई पड़नेवाले आधे अंश में कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता। चन्द्रमा का आधे से अधिक भाग देख सकना इसलिए सम्भव है कि पृथ्वी की कक्षा की तुलना में चन्द्रमा की कक्षा कुछ अधिक झुकी हुई है और हमें चन्द्रमा के दोनों ध्रुवों के आगे का धरातल भी दिखलाई पड़ जाता है।

आधुनिक ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा महाश्मशान है। वहाँ कभी किसी प्रकार का परिवर्तन ही नहीं होता। न जीव-जन्तु है, न उद्भिज। मनुष्य का क्या कहना। वहाँ अनन्त नीरवता है; मृत्यु का अखंड, कठोर शासन है। गैलीलियो ने अपने दूरदर्शक से देखा तो उसे इसमें संदेह नहीं रहा कि चन्द्रमा पर पहाड़, पहाड़ियाँ इत्यादि हैं। काले धब्बे उसके छोटे दूरदर्शक में बहुत साफ नहीं दिखलाई पड़ते थे, अतः उन्हें उसने समुद्र समझ लिया। आजकल की बड़ी-बड़ी शक्तिशाली दूरबीनों से पता चला है कि गैलीलियो ने इस सम्बन्ध में गलती की थी। जिसे उसने समुद्र समझा था, वह वास्तव में सपाट, ऊसर, पथरीला मैदान है। चन्द्रमा में न हवा चलती है, न आँधी उठती है; न पानी बरसता है। जल का वहाँ नाम नहीं। इसलिए इन मैदानों में किसी प्रकार का परिवर्तन होता दिखलाई नहीं देता।

छोटे-से दूरदर्शक में देखने पर भी यह साफ पता चल जाता है कि चन्द्रमा पृथ्वी से बिल्कुल भिन्न है। पृथ्वी का धरातल समतल है। कहीं-कहीं पहाड़ अवश्य हैं परन्तु वह इतना ऊबड़-खाबड़ नहीं है जितना चन्द्रमा का धरातल। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा के धरातल में गहरे-गहरे खड्ड हैं जो हमारी पृथ्वी के ज्वालामुखियों के मुख-जैसे जान पड़ते हैं।

इसी समता के कारण इन्हें “ज्वालामुखी के मुख” कहा भी जाता है। इनमें से कुछ तो इतने छोटे हैं कि हम उन्हें केवल बहुत ही बड़े दूर-दर्शकों के सहारे देख सकते हैं, परन्तु कुछ का व्यास १०० मील या इससे भी अधिक है। अब तक लगभग ३२,००० खड्ड (मुख) देखे जा सके हैं।

ये “ज्वालामुख” प्याले या गहरी थालियों के समान हैं। कुछ की दीवार २०,००० फुट ऊँची है। १,००० फुट से कम ऊँची दीवारोंवाले प्याले तो बहुत ही थोड़े मिलेंगे, बीच में गहरा गड्ढा होता है और उसे घेरकर १,००० फुट की उँचाई से लेकर २०,००० फुट की उँचाई तक के पहाड़ पंक्ति बाँधे खड़े होते हैं। कहीं-कहीं ये “ज्वालामुख” सामान्य धरातल से बहुत ऊँचे उठे हुए हैं जैसे हाथ पर आबला उठ आया हो। बहुत-से ज्वालामुखों में एक या कई चोटियाँ दिखलाई पड़ती हैं। ये उन पहाड़ों की चोटियाँ हैं जो प्यालो के बीच में उठ खड़े हुए हैं। चन्द्रमा के धरातल पर कहीं-कहीं ये ज्वालामुख बहुत सटे-सटे हैं। कहीं-कहीं ये इस प्रकार दिखलाई देते हैं जैसे पुराने ज्वालामुख से कोई नया ज्वालामुख फूट पड़ा हो। पहले यह समझा जाता था कि इन ज्वालामुखों के बनने का कारण भी वही है जो कारण पृथ्वी पर ज्वालामुखियों की उत्पत्ति का है। परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि उस प्रकार इतने बड़े ज्वालामुख नहीं बन सकते। सम्भव है, ज्वालामुखी पहाड़ों से निकला हुआ पदार्थ इसलिए बहुत दूर और बहुत ऊँचा जा सका हो कि चन्द्रमा की आकर्षणशक्ति पृथ्वी की अपेक्षा कहीं कम है; पहले निकलनेवाले पिघले पत्थर दीवार-से हो गये हों और पीछे जो पिघला पत्थर निकला वह धीरे से फैल गया और समतल के रूप में दिखाई पड़ने लगा। यही समतल इन प्यालो की तली है।

कुछ लोगो का मत है कि इन ज्वालामुखों की उत्पत्ति एक दूसरे ढंग से हुई है। यदि पिघले हुए गुड़ को ठंडा किया जाय तो उसमें से बड़े-बड़े गैस के बुलबुले निकलकर सतह पर टूटते हुए दिखलाई देते हैं। सम्भव है, जब चन्द्रमा बहुत गरम और पिघला हुआ था उसके ठंडे होने की प्रक्रिया में इसी प्रकार के बुलबुले उठे हों। इन बुलबुलों के फूट जाने से वृत्ताकार ज्वालामुखी बन गये होंगे। यह मत बहुत थोड़े वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है।

परन्तु एक तीसरा मत है जिसे स्वीकार करनेवालो की संख्या कही अधिक है। सम्भव है, जब चन्द्रमा अच्छी तरह ठोस नहीं बन पाया हो, उस पर प्रचंड उल्कापात हुए हो। लोगों का विश्वास है कि पहले हमारे सौरमंडल में कही अधिक प्रचंड उल्काये रही होगी और ये बड़ी प्रचंडता से टूटकर गिरती होगी। हमारे वायुमंडल में आकर बहुत-सी उल्काये जलकर समाप्त हो जाती हैं। वे हमें अधिक हानि नहीं पहुँचाती। परन्तु चन्द्रमा पर वायुमंडल नहीं है जो उल्काओं की प्रचंडता को कम कर दे। वहाँ उल्काये भयंकर वेग से गिरी होगी। संभव है, उन्हीं की चोट से ये गड्ढे (ज्वालामुख) बने हो। जो पिघला हुआ पदार्थ भीतर से निकला वही गड्ढे के चारो ओर दीवारो के रूप में ठोस हो गया। उल्का-द्वारा किये गये इस प्रकार के उत्पात से हम अपरिचित भी नहीं हैं। अरिजोना नामक स्थान पर इस तरह का गड्ढा पृथ्वी पर भी मिलता है। जो हो, इन गड्ढो का कारण कुछ भी हो, है ये बड़े विचित्र।

चन्द्रमा पर पहाड़ों की दस शृंखलायें हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा का धरातल ऊबड़-खाबड़ है, उसी प्रकार ये शृंखलाये भी हैं। ये पहाड़ पृथ्वी के पहाड़ों के समान ही हैं। इनकी चोटियाँ

साधारणतः ५,०००, १०,००० और १५,००० तक ऊँची है। कुछ चोटियाँ इससे भी अधिक ऊँची हैं। चन्द्रमा की सबसे बड़ी पर्वत-श्रेणी अपेनाइन्स है जो ६४० मील लम्बी है और जिसमें ३,००० से ऊपर ऊँची चोटियाँ हैं। चन्द्रमा के छोटे आकार का ध्यान रखते हुए हमें यह कहना पड़ता है कि उसके पर्वत पृथ्वी से अधिक ऊँचे हैं। कुछ चोटियाँ २७,००० फुट तक ऊँची हैं। तुलना के लिए हम यह बता देना चाहते हैं कि पृथ्वी की सबसे ऊँची पर्वत-चोटी गौरीशंकर २९,००२ फुट ऊँची है।

पहाड़ों के अतिरिक्त चन्द्रमा के धरातल पर बड़ी दरारे भी हैं जो पहाड़ों या मैदानों के फट जाने से बन गई हैं। ये दरारे लगभग आधे मील चौड़ी हैं और इनमें से कुछ कई सौ मील लम्बी हैं।

परन्तु चन्द्रमा के धरातल पर इन ज्वालामुखों, पहाड़ों और दरारों से भी अद्भुत एक वस्तु है। ये चमकीली धारियाँ हैं जो बहुधा सैकड़ों मील लम्बी होती हैं। यह हलके रंग की धारियाँ कुछ ज्वालामुखों से निकलती दिखलाई पड़ती हैं और दूर तक फैली जान पड़ती हैं। ये सभी दिशाओं में चली गई हैं। अनुमान किया जाता है कि बहुत समय हुआ जब चन्द्रमा ठंडा हो रहा होगा तो उसके भीतर से बहुत-सी गैस निकली होगी। तंग मुख से निकलने के कारण इसने भीतर से धरातल पर दबाव डाला होगा जिससे धरातल इस रूप में फट गया।

अपनी धुरी पर चन्द्रमा इतनी धीमी चाल से चक्कर लगाता है कि वहाँ प्रत्येक स्थान पर १४ घंटे की रात होगी और १८ घंटे का दिन। दिन के समय धरातल इतना गरम हो जाता है कि पानी उबलने लगे, वहाँ रात को तापक्रम इतना कम हो जाता है कि हिमांक से भी कई

अंक नीचे । यदि कोई व्यक्ति चन्द्रमा पर विरसित कर दिया जाय तो वह वहाँ पहुँचकर या तो खोल जायेगा या सर्दी में ऐठ जायगा ।

## सूर्य का कुटुम्ब

सूर्य का कुटुम्ब बहुत बड़ा है । उसमें अनेक सदस्य हैं और इन सब सदस्यों का आकार-प्रकार, उनका कुटुम्ब में महत्त्व, उनकी आयु और उनका स्थान—सब भिन्न-भिन्न हैं ।

पहले हम सूर्य के पुत्रों का परिचय देगे । इन्हें ज्योतिषी 'ग्रह' कहते हैं ।

हमारे पूर्वज ग्रहों की संख्या ९ मानते थे । दूसरे शब्दों में उनके अनुसार सूर्य के ९ पुत्र थे । हमारे कितने ही धर्मग्रंथों में "नवग्रह" शब्द मिलता है । पूजा के समय जिस प्रकार कुलपति सूर्य (अथवा सविता) की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार उसके पुत्रों (ग्रहों) को भी शान्त किया जाता है । ये ग्रह इस प्रकार थे—चन्द्र, राहु, केतु, बुध, शुक्र, मंगल, सूर्य, बृहस्पति और शनि । वास्तव में राहु और केतु चन्द्रमा के दो प्रातो का ही नाम था । इन्हें भी भारतीय ज्योतिषी चन्द्रमा के साथ गिन लेते थे । वास्तव में वे 'ग्रह' शब्द का वह अर्थ नहीं लगाते थे जो हमने इस पुस्तक में लगाया है । हमने इस शब्द को "भ्रमणशील पिंड" के अर्थ में प्रयुक्त किया है । परन्तु भारतीय जोतिष में इनका नाम फलित के विचार से रक्खा गया था । फलित का कहना है कि ये पिंड प्राणियों की दशा को अपने अधिकार में रखते हैं अथवा "ग्रहण करते हैं ।" जिस अर्थ में हमने ग्रह शब्द का प्रयोग किया है उस अर्थ में चन्द्रमा और सूर्य ग्रह नहीं हैं; राहु और केतु तो केवल पृथ्वी के उपग्रह चन्द्रमा की दो भिन्न अवस्थाएँ-

मात्र है। अतः भारतीय ज्योतिषियों के नव-ग्रह-समूह में से केवल पाँच, आधुनिक दृष्टि से, ग्रह ठहरते हैं—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि। जब पश्चिमी ज्योतिषियों ने यह खोज की कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है तो उन्हें एक छटा ग्रह मिल गया। परन्तु अब ज्योतिषियों ने—उरण, वरुण और कुबेर—का भी पता लगा लिया है। इसलिए इस समय तक जो खोज हुई है उसके अनुसार सूर्य के १० पुत्र हैं।

ये सूर्य के पुत्र गुरुत्वाकर्षण-द्वारा उसका अनुशासन पूर्णतः मानते हैं और भक्तिपूर्वक उसकी प्रदक्षिणा करते हैं।

यदि हम सूर्य पर हो और हमें आकाश की यात्रा करते हुए अन्तिम ग्रह की ओर जाना हो तो हमें क्रमशः बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, शनि, वरुण और उरण होकर कुबेर पर पहुँचना होगा।

## १—बुध

सूर्य से सबसे पास बुध है। पहले हम इसी को लेंगे।

आकाश में बुध को देखना बड़ा कठिन है। कोई-कोई तो आयु भर इसे नहीं देख पाते। कारण यह है कि बुध को देखने के लिए हमें प्रत्येक दिन केवल दो घंटे मिलते हैं—एक घंटा सायंकाल के समय और एक घंटा प्रातःकाल के समय। बुध सूर्य के इतना पास है कि वह सूर्य से दो घंटे पहले उदय होता है और दो ही घंटे बाद अस्त हो जाता है। सूर्योदय और सूर्यास्त के एक घंटे पहले और एक घंटे बाद तक क्रमशः पूर्व और पश्चिम का आकाश इतना लाल और चमकीला होता है कि रंग और चमक में बुध दिखलाई नहीं पड़ता। दूसरी बात यह है कि वह क्षितिज से अधिक ऊपर नहीं उठ पाता। शहर

के पास क्षितिज का आकाश कभी ठीक स्वच्छ नहीं दिखलाई देता। उस पर गर्द चढ़ी रहती है। इसलिए शहर के लोग बुध को बहुधा देख नहीं पाते। हाँ, देहात में इस ग्रह का देख लेना इतना कठिन नहीं परन्तु तब भी देखनेवाले को सचेष्ट रहना पड़ता है।

बुध को देखने के लिए सबसे अच्छा समय वर्षा-ऋतु के बाद है। उस समय वायु में धूल के कण नहीं रह जाते और आकाश धुलकर खूब स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगता है। उस समय यह क्षितिज के थोड़ा ऊपर चमकते हुए तारे के रूप में देखा जाता है। इसी लिए जन-साधारण भ्रम में पड़कर इसे बुध का “तारा” कहते हैं।

बुध का ग्रह खूब चमकीला है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह सूर्य से सबसे कम दूर है। इसको सबसे अधिक प्रकाश और गर्मी मिलती है। बुध पर हमारी पृथ्वी से कई गुना तेज धूप और गर्मी पड़ती होगी। वहाँ पानी किसी भी रूप में नहीं होगा। उसके धरातल के पहाड़, मैदान और गड्ढे सब झुलसे हुए-से होंगे। मुसलमानों का विश्वास है कि प्रलय के दिन सूर्य एक नेत्रों के बराबर ऊँचा रह जायगा और सब प्राणी झुलसकर मृत्यु को प्राप्त होंगे। बुध पर ऐसी ही प्रलय की छाया है। वह तपता हुआ महान् श्मशान है।

बुध सबसे हलका पिंड है। यह सम्भावना की जाती है कि बुध पर किसी प्रकार का वायुमंडल नहीं होगा। वायु के कण कभी के उस ग्रह से उड़कर बाहर पहुँच गये होंगे।

यह भी पता चलता है कि बुध पर बादल नहीं हैं। जब जल ही नहीं तो बादल कहाँ से होंगे? इससे इसके पत्थर सूर्य की गर्मी से तपकर गाढ़े रंग के हो गये होंगे।

बुध पर भी उसी तरह पहाड़ होंगे जिस तरह चन्द्रमा पर हैं परन्तु यह ग्रह इतना छोटा है और इतनी दूर है कि हम इसके पहाड़ों को देख नहीं सकते।

चन्द्रमा की तरह बुध की भी कलाये हैं और जिस तरह चन्द्रमा का एक ही मुख पृथ्वी की ओर रहता है इससे यह साफ़ अनुमान किया जा सकता है कि जहाँ बुध का एक भाग सूर्य से प्रकाशित होकर तपता होगा वहाँ उसके दूसरे भाग में सूर्य की रोशनी कभी नहीं पहुँचती होगी और वह बर्फ़ की तरह ठंडा होगा।

बुध सूर्य और पृथ्वी के बीच में बहुत कम आता है। इसका कारण यह है कि उसकी धुरी सूर्य के मार्ग से तिरछी रहती है। जब वह सूर्य के सामने पड़ जाता है तो वह सूर्य पर छोटे-से गोल धब्बे के रूप में दिखाई देता है। परन्तु उसे देखने के लिए किसी दूरबीन का सहारा लेना होगा। सन् १९४० में १२ नवम्बर को ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई थी। १३ वर्ष बाद फिर ऐसा होगा।

## २-शुक्र

संध्या के समय जब सूर्यास्त हो चुका होता है, हम आकाश में सबसे पहले एक बहुत ही तेज़ चमकनेवाले नक्षत्र को उगते हुए देखते हैं। यह तारा पश्चिम की दिशा में दिखलाई देता है और सूर्यास्त के ४ घंटे बाद तक देखा जा सकता है। यह तारा गोधूलि के समय उगता है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे अधिक चमकीला होता जाता है। साँझ के अँधेरे में यह चमकते हुए हीरे की तरह दिखाई पड़ता है। लोग इसे 'संध्या-तारा' कहते हैं। इसी प्रकार का एक तारा हमें सूर्योदय के समय से कुछ पहले पूर्व में दिखलाई देने लगता है।

यह तड़का होने के कुछ पहले आकाश के इस भाग में उग आता है और फिर सूर्योदय होने पर धीरे-धीरे धूर्य की किरणों में इसका लोप हो जाता है। जन-साधारण इसे 'प्रभात-तारा' कहते हैं। परन्तु वास्तव में 'संध्या-तारा' और 'प्रभात-तारा' दो तारे नहीं हैं। ये दोनों एक ही हैं। इन्हें 'तारा' कहना भी भूल है। वास्तव में यह शुक्र ग्रह है जो दो भिन्न परिस्थितियों में हमें इस प्रकार चमकना दीख पड़ता है।

आकाश का सौन्दर्य, विशेषकर संध्या के समय, इस तारे के कारण बहुत बढ़ जाता है। इसका प्रकाश मनोहर, स्निग्ध और स्वच्छ श्वेत वर्ण का होता है।

बुध की तरह शुक्र में भी कलायें होती हैं जो दूरबीन से देखने पर दिखलाई दे जाती हैं। जब इसका पूर्णमंडल हमें दिखलाई देता है तो यह हमसे बहुत दूर रहता है; जब इसकी कला पतले हँसिए की तरह क्षीण रहती है तो यह हमसे सबसे निकट रहता है।

शुक्र इतना चमकदार है कि कभी-कभी रात के समय इसकी परछाई पड़ती है। यों साधारणतः हमारी आँखें सबसे पहले उसी की ओर उठती हैं। परन्तु यदि शुक्र का भली भाँति अध्ययन करना हो तो उसे सबेरे के समय देखना चाहिए। सूर्य का प्रकाश इसके लिए बड़ी बाधा है, अतः इसको किसी ऐसी आड़ से देखना चाहिए जिससे यह तो दिखाई दे परन्तु सूर्य दृष्टि से ओझल रहे। ऐसा करने से हम आकाश में शुक्र के पक्ष से परिचित हो जायेंगे। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह खो न जाय, नहीं तो नंगी आँख से हम इसे खोजकर निकाल नहीं सकेंगे।

हम कह चुके हैं कि शुक्र की चमक बहुत तेज है। इससे आँखों को चकाचौंध-सी हो जाती है और हम इसकी सतह की जाँच नहीं कर सकते। अतः शुक्र से अच्छी तरह परिचित होने के लिए हमें दूरबीन का सहारा लेना चाहिए।

दूरबीन से देखने पर कई महत्वपूर्ण बातें शुक्र के सम्बन्ध में ज्ञात होती हैं। उस समय हम इसकी कलायें स्पष्ट देख सकते हैं। पता चलता है कि पृथ्वी की तरह शुक्र पर भी वायुमंडल है। शुक्र में बादल भी उठते हैं जिनके कारण उस पर कभी कभी हल्के रंग के भद्दे धब्बे दिखलाई पड़ते हैं। बुध की तरह शुक्र भी सूर्य के सामने आकर गोल धब्बे के रूप में दिखलाई देने लगा है। इस समय हम इसके चारों ओर प्रकाश का घेरा देख सकते हैं।

शुक्र का कोई उपग्रह नहीं है। कोई दूसरा पिंड इसकी प्रदक्षिणा करता हुआ दिखलाई नहीं देता। परन्तु यह स्वयं २२५ दिनों में सूर्य की परिक्रमा करता है। अपनी धुरी पर यह कितने दिन में घूम लेता है, यह हम ठीक-ठीक नहीं बता सकते क्योंकि शुक्र पर पहाड़ आदि कोई ऐसी चीज़ नहीं दिखलाई देती जिससे इसके धरातल को चिह्नित किया जा सके। शुक्र का धरातल कैसा है, यह अभी हमारे लिए रहस्य है।

क्या शुक्र पर प्राणी है? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का उत्तर आशापूर्ण है। बात यह है कि प्राणियों के जीवित रहने के लिए जल, वायु, विशेष तापक्रम और भोजन के लिए उद्भिज आदि की आवश्यकता है। यह बात निश्चिन्त है कि शुक्र पर वायु और जल की मात्रा अवश्य है, चाहे ये दोनों वस्तुएँ इतनी अधिक मात्रा में वहाँ न हों जितनी अधिक मात्रा में ये हमारी पृथ्वी पर हैं। यद्यपि सूर्य से अधिक समीप

होने के कारण शुक्र का तापक्रम हमारी पृथ्वी के तापक्रम से दुगुना होगा अर्थात् वहाँ हमारे यहाँ की गर्मी से दुगुनी गर्मी पड़ती होगी, परन्तु घने वायुमंडल और बादलों के कारण शुक्र जीवधारियों के लिए उपयुक्त हो सकता है।

### ३—पृथ्वी

बुध और शुक्र के बाद हमारी पृथ्वी आती है। आकार में यह बुध और शुक्र दोनों से बड़ी है परन्तु शुक्र से बहुत अधिक बड़ी नहीं। यह अपनी धुरी पर २४ घंटे में घूम जाती है और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने में इसे ३६५ दिन लगते हैं।

ऊपर बुध के वर्णन में हमने बतलाया है कि उसका गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है और इस कारण उस पर वायुमंडल नहीं है। पृथ्वी के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं। शुक्र और पृथ्वी दोनों इतने बड़े हैं कि उनका आकर्षण वायु के कणों को उनके धरातल से बाँधे रखता है। परन्तु दोनों के वायुमंडल में अन्तर है। रश्मि-विश्लेषण-यंत्र के द्वारा परीक्षा करने से शुक्र के वायुमंडल में आक्सिजन (प्राण-वायु) की उपस्थिति का पता नहीं चलता। यदि हम थोड़ा विचार करें तो कारण हम समझ सकेंगे। पृथ्वी पर जो वनस्पतियाँ और उद्भिज हैं उनसे प्राण-वायु बराबर निकलती रहती है। यदि ऐसा न होता तो साँस लेते-लेते, वस्तुओं के जलने और मोरचना लगने से हमारे वायुमंडल की प्राणवायु कभी की चुक गई होती। इसी तर्क के द्वारा हम यह सिद्ध करते हैं कि शुक्र में प्राण-वायु का अभाव है।

इस पृथ्वी से हम भली भाँति परिचित हैं, इसलिए हमें इसके सम्बन्ध में अधिक लिखना नहीं है। परन्तु परिचय अधिक होने के

कारण ही हम कई बातें समझ नहीं पाते। हम आकाश में दूसरे ग्रहों को चमकता हुआ देखते हैं। वे हमें उदय और अस्त होते जान पड़ते हैं। परन्तु आकाश में स्वयं हमारी स्थिति कैसी है, यह बात हम नहीं जानते।

मान लीजिए कि अन्य ग्रहों पर भी हमारे-जैसे समझदार प्राणी हैं। वहाँ से हमें अपनी यह पृथ्वी किस रूप में दिखाई देगी? उन्हें हमारी पृथ्वी आकाश में उसी प्रकार चमकती हुई दिखलाई देगी जिस प्रकार हमें अन्य सब ग्रह दीख पड़ते हैं। हमारा चन्द्रमा उन्हें छोटे-से चमकीले तारे की तरह दिखलाई पड़ेगा जो अपने से बड़े तारे की परिक्रमा कर रहा होगा। परन्तु किसी ग्रह के निवासी यह नहीं जान सकेंगे कि पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन है या नहीं। जिस प्रकार हम उनके सम्बन्ध में अनुमान लगाते हैं, उसी प्रकार उन्हें अनुमान तक ही सीमित रहना होगा। बड़ी-बड़ी दूरबीनों के सहारे बादल दिखलाई देंगे और ऋतुओं के परिवर्तन के साथ हर उद्भिज और पिघलती हुई बर्फ का आभास होगा। पृथ्वी के प्रकाश की परीक्षा करने से उन्हें उस पर भाप और प्राण-वायु की उपस्थिति का पता चल जायगा और वे यह बात भी जान लेंगे कि पृथ्वी के ऊपर तापक्रम की मात्रा इतनी कम है कि उसमें जीवन का विकास हो सकता है।

## ४—मंगल

पृथ्वी के बाद सौरपरिवार में मंगल का स्थान है। इसका रंग सिंदूर की तरह लाल है परन्तु हर दूसरे साल यह अंगारे की तरह चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। बहुधा ऐसा होता है कि संध्या के समय आकाश में शुक्र और मंगल के ग्रह पास-पास दिखलाई देते हैं। उस समय शुक्र के शुक्ल वर्ण के सामने मंगल का रक्तवर्ण स्पष्ट हो जाता है।

परन्तु मंगल की लाली सदा एक-जैसी नहीं रहती। इसका कारण यह है कि मंगल हमसे समान ही दूरी पर नहीं रहता। प्रत्येक २ वर्ष १ महीना १८७ दिन बाद मंगल हमसे निकटतम दूरी पर आ जाता है। उस समय वह खतरे की लाल रोशनी की तरह चमकता दिखलाई पड़ता है। उसका आकार भी सदा एक-सा नहीं रहता। प्रत्येक १५ या १७ वर्ष में वह हमसे इतना निकट हो जाता है कि वह हमें विशेष रूप में बड़ा लगता है। उस समय यह सूर्य से विपरीत दशा में रहता है, अतः यह सूर्यास्त के समय उगता है और सूर्योदय के समय डूबता है। इसलिए यह हमें रात भर दिखलाई पड़ता है। दूरदर्शक (टूरबीन) में देखने से यह एक रुपये में छोटा दिखलाई देगा और इसकी चमक ध्रुवतारे की अपेक्षा ५५ गुना अधिक होगी। जब सूर्य और मंगल एक ही दिशा में रहते हैं उस समय मंगल हमको बहुत छोटा दीख पड़ता है परन्तु फिर भी वह ध्रुवतारे की अपेक्षा डेढ़-गुना चमकदार रहता है।

मंगल का व्यास केवल ४,२१५ मील है। यह सख्या पृथ्वी के व्यास की संख्या से आधी है। इस ग्रह का आकर्षण हमारी पृथ्वी के आकर्षण की अपेक्षा लगभग तिहाई है।

बुध और शुक्र की तरह मंगल में भी कलाये दिखलाई पड़ती हैं परन्तु जब उसकी कला सबसे छोटी होती है तब भी वह शुक्लपक्ष की एकादशी के चन्द्रमा के समान होता है। मंगल में धनुष-जैसी कला नहीं होती।

मंगल में ऋतुओं की क्या दशा होगी, यह प्रश्न भी कौतूहल-जनक है। पहली बात तो यह है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर जितने समय में घूमती है (३६५ दिन), मंगल उससे दुगुने समय में सूर्य की

परिक्रम करता है। इससे वहाँ का वर्ष हमारे वर्ष से दुगना है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि मंगल में ऋतुएँ पृथ्वी की ऋतुओं से दुगनी लम्बी होती होंगी। वैज्ञानिकों ने प्रमाणो-द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि मंगल की धुरी उसकी कक्षा से लगभग उतनी ही तिरछी है जितनी पृथ्वी की धुरी पृथ्वी की कक्षा से। इस बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि मंगल के भू-भागों में भी ऋतुओं का विभाग हमारी पृथ्वी-जैसा होगा। वहाँ भी जाड़े और गर्मी की ऋतुएँ होती होंगी परन्तु ये ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से अधिक दूर है, अतः सर्दियाँ अधिक पड़ती होंगी। एक बात और है। पृथ्वी की कक्षा की अपेक्षा मंगल की कक्षा अधिक दीर्घ वृत्ताकार है। इसलिए कभी-कभी मंगल पृथ्वी से बहुत दूर पड़ जाता होगा और उस पर अत्यन्त कड़ी सर्दियाँ पड़ती होंगी।

मंगल के ऊपर के धरातल के चिह्न छोटे दूरदर्शक से भी सुगमता से देखे जा सकते हैं। इसमें हमें उसके परिभ्रमणकाल का ज्ञान बहुत ठीक है। मंगल अपनी धुरी पर २४ घंटे ३७ मिनट २२.५ सेकेंड में घूम जाता है। यदि हम मंगल पर पहुँच जायें तो हमारे रात-दिन उतने ही बड़े होंगे जितने यहाँ पृथ्वी पर होते हैं। परन्तु मंगल का वर्ष हमारे वर्ष से दुगना होगा क्योंकि मंगल को सूर्य की परिक्रमा करने में ६८७ दिन लगते हैं।

मंगल और पृथ्वी की अनेक बातों में साम्य है। इसलिए वैज्ञानिकों के सामने बहुत समय से यह प्रश्न उठा हुआ है—क्या मंगल पर जीवन है? क्या वहाँ हमारे-जैसे प्राणी हैं? दूरदर्शक के सहारे मंगल का अध्ययन करने पर कुछ विशेष प्रकार के चिह्नों का पता लगता है जिनसे वहाँ मनुष्य-जैसी किसी बुद्धिमान् जाति के प्राणियों के रहने की कल्पना की गई है।

दूरदर्शक में मंगल केवल आध इंच का चमकीला वृत्त दिखलाई पड़ता है। उस पर न किसी प्रकार की रेखाएँ दिखलाई पड़ती हैं, न चिह्न। इसका कारण यह है कि मंगल पर जो रेखाएँ हैं वे बहुत फीके रंग की हैं। मंगल के तेज लाल रंग के सामने ये रेखाएँ फीकी पड़ी रहती हैं।

साधारणतः दूरदर्शक में मंगल पर नारंगी रंग के टुकड़े दिखलाई पड़ते हैं। उन पर मैले हरे रंग के चिह्न फैले हुए हैं। ये चिह्न उत्तर और दक्षिण में जाकर समाप्त हो जाते हैं। जहाँ ये समाप्त होते हैं, वहाँ कभी-कभी सफेद और चमकीले गोल टुकड़े दिखलाई देते हैं। इन हरी रेखाओं और लाल धब्बों ने वर्षों तक मनुष्य को परेशान किया है। पहले लोगो ने समझा कि लाल भाग समुद्र हैं परन्तु अब यह निश्चय हो गया है कि ये समुद्र नहीं हैं। वास्तव में ये मरुभूमियाँ हैं। यदि ये वस्तुतः समुद्र होते तो उन पर सूर्य की धूप अवश्य पड़ती और उनकी जलराशि में सूर्य का प्रतिबिम्ब अवश्य दिखलाई देता। ऐसी कोई बात देखने में नहीं आती। अब तो उनमें हरी-हरी रेखाएँ भी दीख पड़ती हैं और कभी स्वयं उनका रंग बदला करता है। उत्तर और दक्षिण भागों में जो सफेद गोल टुकड़े टोपी जैसे पाये जाते हैं, वे किसी ऋतु में बड़े और किसी में छोटे हो जाते हैं। अतः, अब यह निश्चय किया गया है कि वास्तव में ये टुकड़े ध्रुवों को सूचित करते हैं। वहाँ बर्फ जमी रहती है। जब गर्मी पड़ने लगती है तो ये ध्रुवचिह्न पिघलकर छोटे हो जाते हैं।

परन्तु मंगल की हरे-नीले रंग की रेखाओं, “नहरों” की चरचा सबसे अधिक हुई है। पहले-पहल इटली के ज्योतिषी, शायी परेली ने इन्हें देखा। यह १८७७ की बात है। जब उसने मंगल पर नहरों के

अस्तित्व की आश्चर्यजनक सूचना दी तो लोगों में खलबली मच गई। इनमें कुछ नहरें डकहरी और कुछ दुहरी दिखलाई पड़ती हैं। ये कुछ इस ढंग से बनी हुई हैं कि केवल प्रकृति की रचना नहीं जान पड़ती। इतनी सुव्यवस्था से प्रकृति अपना काम नहीं करती। जहाँ ये नहरे परस्पर एक-दूसरे को काटती हैं, वहाँ मँले हरे गोलाकार धब्बे पाये जाते हैं। ये रेगिस्तान की उपजाऊ भूमि-से लगते हैं। ये नहरे, यदि ये वास्तव में नहरे ही हैं, १०० फुट चौड़ी और कभी-कभी एक हजार मील लम्बी हैं।

मरुभूमि गाढ़े भूरे रंग की है। ग्रीष्मऋतु के आते ही ध्रुवों का बर्फ पिघलने लगता है और पानी नहरों में होकर बह चलता है। उस समय मरुभूमि का रूप ही बदल जाता है। नहरों के दोनों ओर वन-स्पतियाँ या फसले उग आती हैं। इनके कारण नहरों के किनारे हरे या श्याम दिखलाई पड़ते हैं। दूरदर्शक में इन किनारों को रंग बदलते हुए देख लिया जाता है। कुछ महीने बाद रेखाओं का रंग फिर पुराना-जैसा हो जाता है।

इन नहरों के सम्बन्ध में आज तक मतभेद चला आता है। लॉवेल ने कहा है, मंगल पर ४०० नहरों का जाल बिछा हुआ है। उसने उनके चित्र उपस्थित किये। दूसरे वैज्ञानिक बरनार्ड ने कहा—नहीं, कोई भी नहर नहीं है। मुझे स्पष्ट, पतली, सीधी रेखा एक भी नहीं मिलती। ये अस्पष्ट, मोटी, भट्टी, टूटी-फूटी रेखाये नहरें हो ही नहीं सकती। फोटो लेने से भी वैज्ञानिक किसी एक मत पर नहीं पहुँच पाते क्योंकि फोटो में अधिक विस्तार नहीं आता। सम्भव है, जैसा बरनार्ड कहते हैं, छोटे-छोटे बिन्दु-जैसे चिह्न-मात्र हों, जो दूरी के कारण मिले-मिले, रेखाओं-जैसे, उतर आते हैं। अब वैज्ञानिकों और ज्योतिषियों

की अधिक संख्या यह मानने लगी है कि मंगल की नहरें केवल माया-जाल हैं। परन्तु फिर प्रश्न यह होता है कि माना, ये पृथक्-पृथक् “कलंक” हैं परन्तु ये इतने नियमानुसार क्यों बिखरे दिखलाई देते हैं कि उनसे ऐसी नहरों का रूप बन जाता है जिन्हें केवल समझदार मस्तिष्क ही बना सकता है। वास्तव में, इस विषय में अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

परन्तु नहरों का प्रश्न हमारे सामने एक दूसरे बड़े प्रश्न को ला खड़ा करता है। क्या मंगल पर जीव हैं? जब पहली बार नहरों की बात चली तो लोगो की कल्पना ने मंगल पर जीवधारियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में अनेक बातों का आविष्कार किया। एक ने कहा—“मंगल पर जल तो है ही नहीं। ध्रुवों पर जो दो-चार इंच बर्फ जमी मिलती है, उसके प्रयोग में लाने का इससे बढ़कर कोई तरीका ही नहीं हो सकता जो मंगल-निवासियों को सूझा है। सचमुच, मंगल में अवश्य कोई बुद्धिमान् जाति रहती है। उसने इस पानी का पूरा सदुपयोग किया जान पड़ता है।” मंगल की इन नहरों के किनारे कहीं-कहीं पर सफेद दाग-से दिखलाई पड़ते हैं। एक ज्योतिषी ने कहा—“ये अवश्य रुई की फसले हैं।” एक अन्य विद्वान्, मोर्स ने एक अजीब ही सूझ पेश की। कहने लगे—“अमरीका में जिस प्रकार कड़ी धूप या पाले से खेत को बचाने के लिए उस पर कागज या कपड़ा ढक देते हैं, वही बात मंगल-निवासी भी करते होंगे। डाक्टर लॉवेल इस प्रकार की कल्पनायें भिड़ाने में अग्रगण्य हैं। उन्होंने मंगल और उसके निवासियों के सम्बन्ध में एक पूरी पुस्तक ही लिख डाली है। उनका कहना है—“ध्रुवप्रदेश मरुभूमि से नीचे है। अतः, नहरों में पानी बिना चढ़ाये चढ़ ही नहीं सकता। अवश्य ही वहाँ पम्प लगे होंगे। कभी-कभी नहरों का रंग

विपरीत दिशा में बदल जाता है, जिससे पता चलता है कि पानी किसी एक निश्चित दिशा में नहीं बहता। इसमें जरूर विलक्षण बुद्धिमान प्राणी का हाथ है।” आगे बढ़कर लेखक कहते हैं—“धीरे-धीरे मंगल समुद्र-रहित हो गया। बड़े-बड़े हरे मैदान मरुभूमि में परिणत होने लगे। इस प्रकार जब चन्द्रमा का जीवन समाप्त होता दिखलाई दिया तो वहाँ के निवासियों ने विलक्षण बुद्धिबल और कौशल का परिचय दिया। समय पाकर हमारी पृथ्वी भी समुद्ररहित हो जायगी। तब मनुष्य को अवश्य कुछ न कुछ बड़ा आविष्कार करना होगा जिससे, चाहे जिस प्रकार हो, जीवन रह सके। मंगल पर पहाड़ न होने और धरातल के सपाट होने के कारण मंगल-निवासियों की युक्ति ने अद्भुत सफलता से काम किया है...।” परन्तु कौन जानता है? सम्भव है, भविष्य में कुछ निश्चय हो। पड़ोसी हैं, हमारे-जैसे सुख-दुख सहनेवाले प्राणी पड़ोस के ग्रह में बसे हुए हैं, इस बात से हमें संतोष अवश्य होता है। सम्भव है, इसी मानसिक परितृप्ति के लिए मनुष्य का मन मंगल पर जीवधारियों के अस्तित्व की बात करता नहीं अघाता।’

### ५--अवान्तर ग्रह

बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि तो हमारे जाने-पहचाने-से जान पड़ते हैं—कम से कम इनका नाम परिचित है—परन्तु इस ‘अवान्तर ग्रह’ के सम्बन्ध में हमारा परिचय इतना भी नहीं। यहाँ प्रारम्भ में ही यह बता देना ठीक होगा कि अवान्तर ग्रह अनेक हैं। ये बहुत-से छोटे ग्रह हैं जो मंगल और बृहस्पति के बीच में पड़ते हैं। लगभग एक सहस्र अवान्तर ग्रहों का पता लग चुका है।

यदि सब ग्रहों की कक्षाओं का एक चित्र बनाया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जितना अन्तर मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं में है, उतना किन्ही दो ग्रहों की कक्षाओं में नहीं। इससे कुछ लोगो ने यह कल्पना की कि सम्भव है बीच में कोई ग्रह हो जो छोटा होने के कारण हमें दिखलाई नहीं पड़ता। इस कल्पना से प्रोत्साहन मिलने पर एक ज्योतिषी ने ग्रहों की वास्तविक दूरी का सम्बन्ध देखना शुरू किया। ग्रहों की सापेक्षिक दूरी निकालकर उसने एक नियम ही बना डाला। उसका कहना था—“यदि हम ०, ३, ६, १२, २४ इत्यादि सख्याओं में, जिनमें पहली दो संख्यायें ० और ३ हैं और शेष ३ गुना करते जायें और उसमें ४ जोड़ते रहें, तो ग्रहों की सापेक्षिक दूरी निकल आयेगी।” इस प्रकार उसने बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि के लिए क्रमशः ४, ७, १०, १६, ५२, १०० की संख्यायें निश्चित की। ग्रहों की वास्तविक दूरी की संख्यायें इन संख्याओं के बहुत करीब पड़ती हैं। इस प्रकार सारिणी उपस्थित करते समय १६ और ५२ के बीच में एक संख्या और आई थी। यह थी २८। परन्तु मंगल और बृहस्पति के बीच में कोई ग्रह नहीं था। यदि नियम ठीक है तो गणना-द्वारा निश्चित स्थान के आस-पास ही किसी मध्यवर्ती ग्रह की कक्षा होनी चाहिए। यह नियम ‘बोडे का नियम’ कहलाया जाता है। १७७८ में जर्मनी के एक प्रोफेसर ने इसका आविष्कार किया था।

८ वर्ष पश्चात् जर्मनी की गोथा वेधशाला के अध्यक्ष ने यह निश्चय किया कि इस मध्यवर्ती नवीन ग्रह की खोज की जाय। अतः, उसने २४ सदस्यों की एक परिषद् स्थापित की और राशिमंडल को २४ भागों में बाँटा। प्रत्येक सदस्य को एक भाग मिला। इस भाग में उसे छिपे हुए ग्रह की खोज करनी थी। इस परिषद् का नाम “आकाश की

खुफिया" पड़ गया। इसमें सन्देह नहीं कि लोग इस काम को ज्योतिषियों के सनकपन की सूझ समझते थे।

वर्ष बीत गया। किसी के हाथ कुछ नहीं लगा। परन्तु जनवरी १, १८०१ की रात को सिसली द्वीप के तरुण ज्योतिषी पियाजी ने इस रिक्त-स्थान में एक ग्रह देख लिया। सिसली की ग्रामदेवी के नाम पर उसने इस ग्रह का नाम सीरिस रक्खा। यह ग्रह आकार में इतना छोटा था, कि ज्योतिषी आश्चर्य में पड़ गये। परन्तु वर्ष भर बाद जब इसी रिक्तस्थान पर एक दूसरे ग्रह का पता चला तो उनके आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा। १८०४ में तीसरा ग्रह मिला। १८०७ में चौथा। इस प्रकार १८४५ तक मंगल और बृहस्पति के बीच के रिक्त-स्थान में लगभग एक सहस्र ग्रहों का पता लग चुका था।

ये ग्रह दो ग्रहों के बीच में हैं। इसलिए इन्हें अवान्तर ग्रह का सामूहिक नाम देना ही अच्छा होगा। वास्तव में इन्हें "क्षुद्र ग्रह" कहना चाहिए।

ये ग्रह इतने छोटे हैं कि इनके व्यास का नापना कठिन है। जिस ग्रह का आविष्कार सबसे पहले हुआ था, वही सबसे बड़ा है। उसका व्यास ४८० मील है। १०० मील के अधिक व्यासवाले ग्रहों की संख्या पन्द्रह-सोलह से अधिक नहीं होगी। अधिकांश ग्रह दस-बीस मील के हैं। कुछ इससे भी छोटे हैं। एक का व्यास तीन मील ही है। क्या यह असम्भव है कि इससे भी छोटा कोई ग्रह दिखलाई पड़ जाय। परन्तु यह 'ग्रह' शब्द की अच्छी विडम्बना रही। कहाँ बृहस्पति, कहाँ तीन मील व्यासवाला ऐलिण्डा ग्रह।

इन छोटे-छोटे बहुसंख्यक ग्रहों की पहचान रखना भी बड़ा कठिन है। कभी कोई विशेष ग्रह दिखलाई पड़ता है परन्तु कुछ ही दिनों

बाद खो जाता है। भी-कभी ऐसा होता है कि ज्योतिषियों ने किसी नवीन ग्रह की सूचना दी परन्तु वह निकला पुराना पहचाना हुआ ग्रह। इतने बहुत-से ग्रहों का नामकरण करना भी कोई सरल बात नहीं। इस कठिन काम को संसार भर के ज्योतिषियों ने बर्लिन (जर्मनी) की रेखेन इन्स्टिट्यूट को सौंप दिया है। इसका 'अध्यग्रह प्रत्येक ग्रह के लिए एक स्थायी नम्बर डाल देता है। फिर वह आविष्कारक को लिखता है—“तुम इसका क्या नाम रखोगे ?” आविष्कारक कोई नाम बतलाता है। ग्रह को यह नाम दे दिया जाता है। परन्तु वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नाम कुछ भी सहायता नहीं करता। जहाँ किसी नये अवान्तर ग्रह की सूचना मिली कि संख्याओवाले रजिस्टर को निकालना पडा। पहले यह निश्चित कर लेना होता है कि नया ग्रह वास्तव में कोई पुराना, भूला-भटका ग्रह तो नहीं है। ज्योतिषी इतने ग्रहों का नाम रखते-रखते थक गये हैं। पहले देवी-देवताओं के नाम पर नामकरण किया जाता है। बहुत दिन हुए सारे देवी-देवता समाप्त हो गये। मित्रों, नगरों, बाग-बागीचों और प्रिय वस्तुओं के नाम की बारी आई। किसी ने अपने कुत्ते के प्यारे नाम पर ग्रह का नाम रक्खा, किसी ने अपनी स्त्री के ! कहाँ हमारे पूर्वज ५-७ ग्रह जानते थे, कहाँ ग्रहों की यह छीछालेदर हो रही है।

अवान्तर ग्रहों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि जिन गैस-कणों के बँध जाने से एक अच्छा-सा ग्रह बँध पाता, वे किसी प्रकार बँध नहीं पाये। इस प्रकार अनेक पिंड हो गये। परन्तु अधिक प्रचलित मत यह है कि ये ग्रह किसी बड़े ग्रह के विस्फोट से बने हैं। यह ग्रह कहाँ स्थित था; कब, कैसे और कितनी ज़ोर से फूटा, इन सब बातों का निश्चय नहीं हो पाया है।

सच तो यह है कि एक नन्हें मे अवान्तर ग्रह—एराँस—को छोड़कर शेष हमारे लिए अधिक मूल्यवान् नहीं। एराँस बहुत बड़ा नहीं है, उसका व्यास केवल १५ मील है। परन्तु उसकी विशेषता यह है कि वह पृथ्वी के इतने निकट आ जाता है जितना—चन्द्रमा को छोड़कर—कोई भी आकाशीय पिंड नहीं आता। अतः, सम्भव है कि यह कभी अनुकूल परिस्थितियों में दिखलाई पड़े और इसके अध्ययन में अवान्तर ग्रहों की उत्पत्ति का रहस्य खुले।

## ६--बृहस्पति

बृहस्पति सौरपरिवार का सबसे बड़ा ग्रह है। महाकाश में मंगल और अवान्तर ग्रहों के बाद इसकी स्थिति है। मंगल और बृहस्पति के बीच में लगभग तीस करोड़ मील की दूरी है। बृहस्पति सूर्य का ज्येष्ठ पुत्र है। उसका व्यास पृथ्वी की अपेक्षा ग्यारह गुना (८६,७२० मील) है। आयतन में यह ग्रह पृथ्वी से १,३०० गुना बड़ा है। सूर्य और बृहस्पति के बीच में, ४८,३२,००,००० मील का अन्तर है।

आकाश का कोई तारा चमक में इस ग्रह की स्पर्धा नहीं कर सकता। ग्रहों में शुक्र और मंगल को छोड़कर इसकी चमक सबसे अधिक है। मंगल रक्तवर्ण है, बृहस्पति कुछ पीले रंग का है; इससे इसके पहचानने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। शुक्र सदा सूर्य के पास रहता है परन्तु बृहस्पति के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। प्रत्येक तेरहवें महीने यह संध्या के समय पूर्व दिशा में उदय होता है और रात भर चमक-कर प्रातःकाल पश्चिम में डूब जाता है।

सूर्य की परिक्रमा करने में बृहस्पति को ११.८६ वर्ष लगते हैं। परन्तु अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह ग्रह अपनी धुरी पर कम समय में घूम

जाता है। इस कार्य में इसे १० घंटे लगते हैं। दूरबीन में देखने पर एक अद्भुत बात दिखलाई देती है। इस ग्रह के भिन्न-भिन्न देश भिन्न-भिन्न वेगों से अपनी धुरी पर घूमते हैं। इससे पहले यह समझा जाता था कि बृहस्पति का अधिकांश भाग अवश्य गैस के रूप में होगा, घूमने के कारण इस गैस के कई पिंड हो गये होंगे और वे पृथक्-पृथक् गति में अपनी-अपनी धुरियों पर घूम रहे होंगे। परन्तु अब वैज्ञानिकों का कहना है कि बृहस्पति के धरातल को हम देख ही नहीं रहे हैं, जो हमें दिखाई पड़ते हैं वे घनी वाष्पों के बादल हैं जो इस ग्रह को घेरे हुए हैं।

दूरदर्शक में देखने से बृहस्पति का सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। वह कई प्रकार के रंगों से रंगा हुआ दीख पड़ता है। उस पर लाल, भूरे और हरे रंग की धारियाँ दिखलाई देती हैं। हरी धारियाँ अनुपात में बहुत कम हैं, अधिकांश धारियाँ लाल या भूरी हैं। कहीं इन धारियों का रंग अधिक गहरा है, कहीं कम। ग्रह के बीच में एक चमकीली धारी है जिसका रंग कहीं पीला है, कहीं ईंट-जैसा लाल। इस मध्यवर्ती धारी के ऊपर-नीचे लाल-भूरे और नीले-भूरे रंग की धारियाँ मिलती हैं। उत्तर और दक्षिण में अन्य कितनी धारियाँ हैं। ये धारियाँ स्थायी नहीं हैं। प्रत्येक वर्ष इनके रूप, स्थिति, चौड़ाई, गति—सभी बातों में अन्तर देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे धब्बे और चिह्न भी दिखाई देते हैं। जिन्हें बदलते हुए सप्ताह-दो सप्ताह से अधिक समय नहीं लगता।

परन्तु कुछ चिह्न ऐसे अवश्य हैं जो कुछ वर्षों तक एक-जैसे बने रहते हैं। १८७८ में एक “बड़ा रक्त-चिह्न” पहली बार दिखलाई दिया था। गणना से पता लगा कि यह ३०,००० मील लम्बा और ७,००० मील चौड़ा है। उस समय यह लाल ईंट के रंग का जान पड़ता था।

यह चिह्न अब भी उसी स्थान पर दिखलाई पड़ता है, यद्यपि अब यह कुछ फीका पड़ गया है।

अब तक इस ग्रह का जो अध्ययन हुआ है इसके आधार पर इसके धरातल के सम्बन्ध में कोई भी निश्चित मत देना असम्भव है। पता चलता है कि इस ग्रह का तापक्रम  $180^{\circ}$  है। इससे इस ग्रह के गैसीय अथवा द्रवित अवस्था में होने की कोई बात ही नहीं उठती। विचार यह किया जाता है कि यह ग्रह अन्य ग्रहों की तरह ही ठोस है परन्तु इसके ऊपर एक बहुत घने और बहुत बड़े वायुमंडल का घेरा है। कुछ लोग यह भी अनुमान लगाते हैं कि इस ग्रह का धरातल हिम से ढका हुआ है और जो बादल इस पर हमें दिखलाई देने हैं वे वास्तव में द्रवीभूत गैसों से बने हैं।

बृहस्पति के उपग्रहों की संख्या नौ है। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ हमारी पृथ्वी के साथ एक ही चन्द्रमा लगा है, वहाँ इस ग्रह को नौ-नौ चन्द्रमा प्रकाशित करते हैं। इन उपग्रहों को हम बृहस्पति के पुत्र अथवा सूर्य के पौत्र भी कह सकते हैं।

बृहस्पति की तेज चमक के कारण इन सब ग्रहों को आँख से देखना कठिन है। परन्तु कुछ तेज आँखवालों ने दो ग्रह कभी-कभी देख लिये हैं।

बहुत दिनों बाद जब अधिक अच्छे दूरदर्शक बन गये तो एक नये उपग्रह का आविष्कार हुआ। शेष चार ग्रहों का पता उस समय लगा जब दूरदर्शक के सहारे फोटो लेने की रीति की खोज हो गई। ये चारों इतनी दूर हैं कि फोटो भी जल्दी नहीं उतरता। प्रकाश को इकट्ठा करने में बड़ा समय लग जाता है, तब कहीं छोटे बिन्दुओं के रूप में इन उपग्रहों के दर्शन होते हैं। सम्भव है, और भी उपग्रह हैं जिनका पता हमारे दूरदर्शक अभी तक नहीं लगा सके हैं।

## ७-शनि

पुराने ज्योतिषियों को जितने ग्रहों का पता था उनमें सबसे अन्तिम शनि का ग्रह है। यह बृहस्पति के बाद और उससे लगभग दुगुनी दूरी पर स्थित है। कोरी आँख से देखने पर शनि भट्टे, पीले रंग का जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसकी चाल भी सब ग्रहों की अपेक्षा सुप्त है। यह २९॥ वर्षों में सूर्य का चक्कर लगा पाता है। कदाचित् इसी में ही हमारे पूर्वजों ने इसका नाम शनैश्चर रखा था। “शनैश्चर” का अर्थ है “धीरे-धीरे चलनेवाला।” उन्होंने इसके प्रभाव को अमागलिक माना है। अतः जिस मनुष्य को रोग, शोक, धन-हानि, कुटुम्ब-हानि आदि दुर्भाग्य-पूर्ण घटनाओं का कष्ट उठाना पड़े उसके लिए कहते हैं—“इस पर शनि की छाया है” अथवा इसे शनि का कष्ट है।

शुक्र, मंगल और बृहस्पति जैसे प्रकाशमान ग्रहों के बीच में इस मटमैले, पाण्डुवर्ण ग्रह को खोज निकालना सरल नहीं है। परन्तु यदि किसी पचाङ्ग की सहायता ली जाय, तो फिर असफलता नहीं होगी।

शनि बृहस्पति से कुछ ही छोटा है। उसका व्यास ७१,५०० मील है। सूर्य से इसकी दूरी ८८,५९,००,००० मील है। यह सब ग्रहों से अधिक चपटा भी है, इसके प्रत्येक ध्रुव ४,००० मील दबे हुए हैं।

यह ग्रह अपनी धुरी तक कितने समय में घूम आता है, इस सम्बन्ध में निश्चित होकर कुछ कहा नहीं जा सकता। इस पर ऐसे कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ते, जिनके हिसाब से इसके परिभ्रमण-काल का पता लगाया जाय। परन्तु कुछ विशेष अनुभवों के आधार पर कहा जा

सकता है कि यह अपनी धुरी पर घूमने में १० घंटे से कुछ ऊपर समय लेता है।

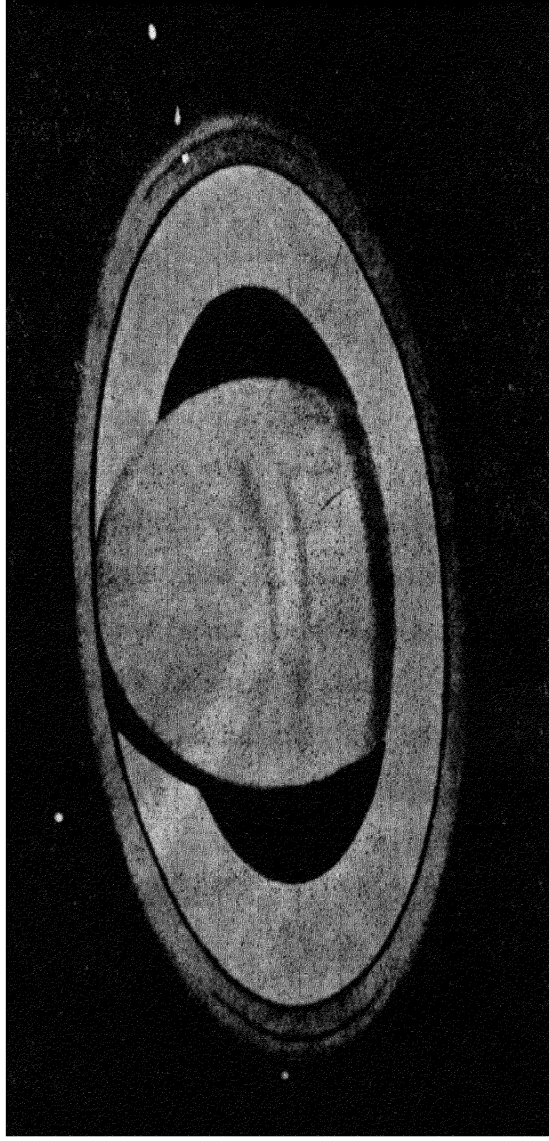
शनि पर भी बृहस्पति के समान धारियाँ बनी दिखलाई देती हैं यद्यपि उनकी रूप-रेखा उतनी स्पष्ट नहीं। ये धारियाँ भी रगीन हैं। मध्यवर्ती रेखाओं का रंग चमकीला पीला है; ध्रुवप्रदेशों की धारियों के रंग हरे हैं। ज्योतिषियों के विचार में ये धारियाँ भी घनी वाष्प के बादल से बनी हुई हैं। बृहस्पति की धारियों के सम्बन्ध में भी उनका यही अनुमान है। वास्तव में, ये धारियाँ क्या हैं, यह समस्या अभी तक भली भाँति सुलझी नहीं है। सम्भव है, निकट भविष्य में यह सुलझ जाय।

यदि हम इस ग्रह को दूरदर्शक से देखें तो बात ही और हो जाती है। तब यह अत्यन्त मनोहर दिखलाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि बीच में कुछ चपटा-सा एक गोला है और इसे चारों ओर से एक सुन्दर, धारीदार, चौड़ी पट्टी घेरे हुए है। ऐसी पट्टी आकाश भर के सभी पिंडों को खोज डालने पर भी हाथ न लगेगी। इसे हम 'वलय' कहेंगे।

इस वलय ने शताब्दियों तक ज्योतिषियों को चक्कर में डाल रक्खा था। सबसे पहले गैलीलियो ने इस वलय को देखा परन्तु तब वह कुछ इस रूप में दिखाई पड़ा कि उसने समझा, ग्रह अकेला नहीं है, तिग्रा है। कुछ वर्षों बाद देखने पर एक ही ग्रह दीख पड़ा। गैलीलियो को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला, "क्या इस शैतान ने अपने लड़कों को ही खा डाला?" गैलीलियो मर गया, किन्तु वह इस वलय का रहस्य नहीं पा सका। इसके पचास वर्ष बाद हालैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी हायगेन्स ने वलय के रहस्य का उद्घाटन किया—'यह पतले



धूमकेतु—पृष्ठ ७३



शनिग्रह और उसका वलय—पृष्ठ ६७

वलय से घिरा हुआ है जो इसे कही नहीं छूता ।' बीस वर्ष बाद फ्रांस के ज्योतिषी कैसनी ने यह सिद्ध किया कि वास्तव में दो वलय हैं । ७५ वर्ष बाद अमरीका के वॉण्ड ने तीन वलयों की उपस्थिति सिद्ध की ।

वास्तव में शनि वलय की तीन कुण्डलियों से घिरा हुआ है । वलय की मोटाई १० मील है । कुण्डलियों ने इसके तीन भाग कर दिये हैं । इन कुण्डलियों में लिपटे हुए शनि का वर्णन इस प्रकार हो सकता है—जैसे कोई तीन पतले छल्ले उँगली में डालकर उन्हें घुमा रहा हो और तीनों छल्ले एक ही केन्द्र-बिंदु के चारों ओर परस्पर सटकर घूम रहे हों । ज्योतिषियों का विचार है कि इन वलयों का पदार्थ न ठोस है, न द्रव । प्रत्येक वलय में करोड़ों की संख्या में छोटे-छोटे कण हैं जो इस ग्रह की इस प्रकार परिक्रमा करते हैं कि अन्त में एक चक्र का रूप बन जाता है । ये चक्र क्यों, कब, कैसे बने, इन प्रश्नों का उत्तर अब भी रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ है ।

परन्तु शनि का आश्चर्य यही समाप्त नहीं हो जाता । शनि के दस उपग्रह हैं अर्थात् हमारी पृथ्वी को घेरकर एक चन्द्रमा घूमता है । शनि को घेरकर दस चन्द्रमा घूम रहे हैं जिनमें प्रत्येक की उसी प्रकार की कलायें होती होंगी जिस प्रकार हमारे चन्द्रमा की । जब हमें शनि का वलय पूरा दिखलाई देता है तो ये उपग्रह ऐसे लगते हैं जैसे पतले धागे में मोती पिरोये गये हो । जब वलय हमें दिखलाई नहीं देता तो हम इन उपग्रहों को अधिक सुगमता से देख सकते हैं । और भी आश्चर्य की बात यह है कि जहाँ और सब उपग्रह अपने-अपने ग्रह के चारों ओर एक विशेष दिशा में घूमते हैं, वहाँ शनि के उपग्रह उनकी उलटी दिशा में चक्कर लगाते हैं । शायद शनि का भाग्य ही उलटा है ।

## ८—वरुण

कुछ समय हुआ, ज्योतिषी समझते थे कि शनि सौरमंडल के प्रवेश-द्वार का प्रहरी है। परन्तु आधुनिक काल में वरुण, उरण और कुबेर नाम के ग्रहों की खोज से उनकी यह विचारधारा गलत सिद्ध हुई है। अब सौरमंडल के प्रहरी का काम शनि के हाथ से लेकर कुबेर को सौंप दिया गया है। कौन जानता है, कल किसी नये ग्रह का आविष्कार हो जाय और कुबेर को भी छुट्टी मिले।

वरुण पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से १५ गुना अधिक दूर है। औसत दर्जे पर सूर्य से उसका अन्तर १,७८,२३,००,००० मील है। सूर्य की परिक्रमा करने में इसे ८४ वर्ष लगते हैं। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से चौगुना—लगभग ३२,४०० मील—है और यह आयतन में उसकी अपेक्षा ६४ गुना बड़ा है।

दूरबीन से देखने पर वरुण हरे रंग का दिखलाई पड़ता है। यह इतनी दूर है कि हममें न कलाये दिखलाई पड़ती है, न यह पता चलता है कि इसका धरातल कैसा है। परन्तु अनुमान किया जाता है कि इसकी दशा बृहस्पति और शनि जैसी होगी क्योंकि यह भी बृहस्पति के समान पृथ्वी से बहुत बड़ा है और इसका घनत्व भी लगभग उतना ही है जितना बृहस्पति का। वरुण के प्रकाश-चित्र के अध्ययन से यह पता लगता है कि इस पर गहरा वायुमंडल मौजूद है। यह भी पता लगा लिया गया है कि यह ग्रह अपनी धुरी पर पीने ग्यारह घंटे में घूम जाता है।

वरुण के ४ उपग्रहों का पता चला है। इनमें से जो सबसे बड़ा है, वह हमारे चन्द्रमा का आधा है।

## ९—उरण

उरण का व्यास ३१,००० मील है। सूर्य से जितनी दूर हमारी पृथ्वी है उससे ३० गुना अधिक दूर यह ग्रह है। औसत निकालने पर अन्तर २,७९,२७,००,००० मील बैठता है। सूर्य की एक परिक्रमा में उसे १६,४७८ वर्ष लगते हैं। बड़े शूरदर्शको में यह हरे रंग का दिखलाई पड़ता है। वरुण से यह ग्रह नाप में जरा-सा ही छोटा है।

इससे अधिक बातों का पता नहीं चलता।

## १०—कुबेर

इस ग्रह के सम्बन्ध में अभी अधिक पता नहीं लगा है। हाँ, यह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से लगभग ४५ गुनी दूरी पर है और कदाचित् सूर्य की प्रदक्षिणा में इसे ३०० से भी अधिक वर्ष लगते हैं। इसका ठीक-ठीक व्यास नहीं मालूम। अनुमान किया जाता है, यह ग्रह मंगल से बड़ा होगा, शायद हमारी पृथ्वी के बराबर हो।

यह हुई नवीनतम ग्रह कुबेर की बात।

परन्तु क्या कुबेर सौर परिवार का अन्तिम सदस्य है ?

कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

कुछ ज्योतिषी कहते हैं कि ग्रहों के तीन समूह अवश्य हैं। उनके अनुसार पहले समूह में बुध, शुक्र और पृथ्वी के ग्रह हैं; दूसरे समूह में मंगल, अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, वरुण और उरण। उनका कहना है कि तीसरे समूह में भी कई ग्रह होंगे जिनमें सबसे पहला कुबेर है।

## उल्कायें और पुच्छलतारे

पिछले परिच्छेद में हमने सूर्य के कुटुम्ब के सम्बन्ध में लिखा है। वहाँ हमने कुलपति सूर्य के पुत्रों और पौत्रों (ग्रहों और उपग्रहों) पर विचार किया है। परन्तु सूर्य का कुटुम्ब इन्हीं पर समाप्त नहीं हो जाता। उसमें दो प्रकार के सदस्य और आते हैं—उल्कायें और पुच्छलतारे। ये सदस्य इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितने पिछले सदस्य थे परन्तु इनकी संख्या कहीं अधिक है और ये उनसे कहीं अधिक विचित्र हैं।

ये तो उल्कायें और पुच्छलतारे मौर-परिवार के ही सदस्य हैं परन्तु साधारणतः हम ऐसा नहीं समझते। ये परिवार के लोगों की तरह एक ही घर में रहते, उठते, बैठते हमें दिखलाई नहीं पड़ते। ये मेहमानों की तरह आते हैं और कुछ दिन मौर-परिवार में रहकर चले जाते हैं।

परन्तु बात ऐसी नहीं है। यदि हम महाभारत के मजरा की तरह दिव्यचक्षु हो जाते और भूत-भविष्य को ही नहीं अनन्त विस्तार को भी देख सकते तो हमें यह पता लग जाता कि वास्तव में सूर्य के कुटुम्बी आकाश में अनन्त दूरी तक फैले हैं और वे आपस में काफी मिल-जुलकर रहते हैं। उनका सहसा उदय-अस्त हो जाना हमें इसलिए सत्य लगता है कि हमारी दृष्टि अनन्त आकाश में बहुत कम दूरी तक जा सकती है और हमारी आयु इतनी थोड़ी है कि हम इन कुटुम्ब के आदमियों को बहुत बार मिलता-जुलता नहीं देख सकते। इनमें पुच्छलतारों का तो स्वभाव भी ग्रहों की तरह है; वे भी ग्रहों की तरह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इससे हम इन्हें ग्रहों की भाँति ही सूर्य का पुत्र कह सकते हैं। हाँ, उल्काओं के जन्म और स्वभाव के सम्बन्ध में विद्वान्

लोग एक-मत नहीं हैं। कुछ कहते हैं कि ये सूर्य के ही छोटे-छोटे टुकड़े हैं जो सदैव मे उसके साथ हैं; कुछ कहते हैं कि वे मूलतः सूर्य के कुटुम्बी नहीं हैं। सूर्य जब किसी नीहारिका में से गुजर रहा था तो इन्हे अपने साथ ले आया था। जो हो, अब तो इतने दिन से रहते-रहते उल्कायें भी सूर्य के कुटुम्ब में मिल गई हैं।

## १—पुच्छलतारे

‘पुच्छलतारे’ नाम से एक विशेष प्रकार के तारे का बोध होता है। यह ऐसा तारा है जिसके पूँछ लगी होती है। इसी पूँछ के कारण यह इतना विचित्र जान पड़ता है। संस्कृत में ‘पुच्छलतारे’ को “धूम्रकेतु” कहते हैं जिसके अर्थ है “धुएँ की ध्वजा।” प्राचीनों ने इस धुएँ की ध्वजा को ससार के लिए अमंगल का चिह्न माना है और उनकी कथाओं और काव्यों में इसका सम्बन्ध अनेक दुर्घटनाओं से जोड़ा गया है।

पुच्छलतारे के सम्बन्ध में दो बातें ऐसी हैं जो हमारे लिए आश्चर्य और भय का विषय बना देती हैं। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारों को हम आकाश में सदैव देखते रहते हैं। उनका उदय-अस्त निश्चित है, उनका स्थान निश्चित है और हम उनसे इतने परिचित हैं कि उनके विषय में हमें तनिक भी आश्चर्य या भय नहीं। परन्तु पुच्छलतारे के सम्बन्ध में बात और है। एक तो वह न जाने कब उदय हो जाय ! उसका आना देखनेवालों को नितान्त आकस्मिक जान पड़ता है। फिर इस दीर्घकाय अभ्यागत की शकल-सूरत भी कुछ अजीब है। एक बड़ा-सा प्रकाशबिन्दु एक बड़ी-सी पूँछ को घसीटता हुआ चला आता है। अकसर यह पूँछ इतनी बढ जाती है कि मन अनेक दुश्चिन्तायें करने लगता है। सभ्य से सभ्य मनष्य भी किसी आपत्ति की भावना में डरने लगते हैं। उस पर

यह लम्बी पूँछ कभी ध्वजा का रूप धारण कर लेती है, कभी मूठदार तलवार का, कभी दो-तीन पूँछे बन जाती है, कभी पूँछ सहसा कही बीच में से टूटकर दो टुकड़े हो जाती है। इन विचित्रताओं के कारण ही पुच्छलतारे के उदय होने को मनुष्य ने सदा से भयसूचक और अशुभ माना है।

पुराने समय के लोगो का विश्वास था कि पुच्छलतारे के उदय होने पर कोई चक्रवर्ती राजा मृत्यु को प्राप्त होगा, दुर्भिक्ष पड़ेगा, महामारी आयगी, राज्य में उपद्रव होगा, कोई महायुद्ध होगा, जन-धन का नाश होगा, रोग-शोक बढ़ेंगे। इसी तरह की अनेक अनिष्ट कल्पनाये की जाती थी। हमारे भारतवर्ष में ही नहीं प्रत्येक देश में पुच्छल-तारे से मनुष्य ने भय का सम्बन्ध जोड़ा था।

पुच्छलतारे जब दिखलाई पड़ते थे तो किसी देश के लोग उन्हें देवताओं का अभिशाप समझते थे और उनको प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करते या बलि देते थे। चीन के ग्राम-निवासी अब भी आतिशबाजी छोड़ते हैं जिससे पुच्छलतारा डरकर भाग जाय। बाद में घटनेवाली अनेक दुर्घटनाओं का सम्बन्ध पुच्छलतारे के उदय से जोड़ लेना तो एक साधारण बात है।

इसी भय के कारण प्राचीनों ने ज्योतिष के विचार से पुच्छलतारे का अध्ययन कभी नहीं किया। चीन और जापान ही ऐसे देश हैं जिनकी प्राचीन पुस्तकों में पुच्छलतारों के उदय की निधियों और उनके मार्ग का ठीक-ठीक उल्लेख मिलता है। इन उल्लेखों ने धूम्रकेतु-सम्बन्धी अनेक खोजों में सहायता दी है।

पुच्छलतारे के तीन भाग होते हैं। बीच में एक चमकदार केन्द्र होता है जिसे 'नाभि' कहते हैं। यह तारे की तरह दिखलाई देता है। यह

आवश्यक नहीं है कि नाभि हो ही। किसी किसी पुच्छलतारे में नाभि नहीं होती। किसी में दो या अधिक नाभियाँ होती हैं। नाभि को घेरे हुए 'शिर' होता है। यह सब पुच्छल तारों में समान रूप से होता है। यह धुनी हुई रुई के गाले की तरह या अस्पष्ट, धुये के गहरे दूधिया रंग के बादल की तरह दीख पड़ता है। साधारणतः सिर गोल होता है। तीसरा भाग "पूँछ" है। यह पुच्छलतारे का सबसे विचित्र भाग है। पूँछ झाड़ू की तरह लगती है और इसकी स्थिति हमेशा सूर्य में विपरीत दिशा में होती है। पूँछ एक ओर मुड़ी रहती है। यदि यह पूँछ मीथी फैला दी जाये तो १५ करोड़ मील तक जा सकती है।

पुच्छलतारे का आयतन बहुत बड़ा होता है। उसका व्यास ३०,००० मील से लेकर १,५०,००० मील तक होता है। १०,००,००० मील व्यास के पुच्छलतारे भी देखने में आ जाते हैं। परन्तु नाभि का व्यास ५०० मील से अधिक कभी नहीं बढ़ता। पुच्छलतारे की सबसे बड़ी चीज पूँछ है जिसकी लम्बाई साधारणतः ५०,००,००० से लेकर १०,००,००,००० मील तक होती है।

परन्तु पुच्छलतारे का आयतन चाहे जितना अधिक हो, वह जिस वस्तु का बना होता है वह मात्रा में बहुत थोड़ी होती है। जब पुच्छल-तारा किसी ग्रह के पास से निकलता है तो गुरुत्वाकर्षण के कारण वह अपना रास्ता छोड़कर उसके समीप खिंच आता है। इससे यह जान पड़ता है कि उसका भार अवश्य ही बहुत कम होगा। भार कम होने का अर्थ है कि जिन तत्वों का वह बना होगा उनकी मात्रा बहुत कम होगी।

ज्योतिष-विशारदों का कहना है कि पुच्छलतारे की नाभि ठोस नहीं होती। वह धूल-के-जैसे कणों और गैस की बनी होती है परन्तु

उसमे कुछ साधारण पत्थर या उसमे बड़े टुकड़े भी होते हैं। उसका सिर इतने हलके पदार्थ का बना होता है कि उसके पार देखने पर भी तारे उतने ही चमकदार दिखाई देते हैं जितने पहले दिखाई देते थे। सिर गैस की परत और धूल के अणुओं का बना होता है। पूँछ इसमें भी हलके तत्त्व की बनी होती है। नाभि में जो गैसीय तत्त्व होता है, वही सूर्य के दबाव के कारण पूँछ का रूप ग्रहण कर लेता है। यह ऐसा ही हुआ जैसे मोटर पीछे से धुआँ छोड़ता हुआ दौड़ रहा हो। परन्तु यह धुआँ लगातार छूटता रहता है और शून्य में जो तत्त्व की हानि होती है उसकी पूर्ति करता रहता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि पूँछ का घनत्व बिजली के बल्ब के भीतरवाले शून्य के घनत्व से भी कम होगा। यही कारण है कि पुच्छलतारों की पूँछ से टकराने पर भी किसी ग्रह को हानि नहीं पहुँचती। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी पृथ्वी निश्चय ही दो-एक बार पुच्छलतारों की पूँछ में पड़ गई है परन्तु वह नाम-मात्र को अपने पथ में विचलित नहीं हुई, न पृथ्वी के ऊपर रहनेवाले प्राणियों को ही इस बात का आभास हुआ।

पुच्छलतारों की पूँछ किस समय किस प्रकार की होगी, इस विषय में हम जरा भी अनुमान नहीं लगा सकते। उसका रूप शीघ्रता से बदलता रहता है। कभी-कभी पूँछ से बड़ा चादर-जैसा टुकड़ा टूटकर शून्य में विलीन हो जाता है। कभी पूँछ स्वयं दो भागों में टूट जाती है या फुलभंडी की तरह भड़ने लगती है। यह भी देखा गया है कि जब कुछ तारे सूर्य के अधिक पास आ जाते हैं तो एक पूँछ के स्थान पर उनमें दो-तीन पूँछें निकल आती हैं।

दूरबीन में देखने पर अनन्त शून्य से आता हुआ पुच्छलतारा किस तरह दीख पड़ता है, यह जानने का कौतूहल होना बुरा नहीं है। अच्छा,

सुनिए ! पहले तो वह केवल साधारण तारे की तरह प्रकाशावदु-  
मात्र दिखलाई देता है। उसकी रूप-रेखा स्पष्ट नहीं होती। जैसे-जैसे वह  
निकट आता जाता है, रूप-रेखा अधिक स्पष्ट होती जाती है और उसका  
सिर अधिक-अधिक छोटा होता जाता है। जैसे-तैसे पुच्छलतारा सूर्य  
की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी पूँछ लम्बी होती जाती है। वह  
सूर्य में विपरीत दिशा में होती है। जब पुच्छलतारा सूर्य में हटने  
लगता है तो यह पूँछ आगे-आगे चलती है। जैसे-जैसे वह सूर्य में दूर  
होता जाता है वैसे-वैसे यह पूँछ छोटी होती जाती है और अन्त  
में अदृश्य हो जाती है।

पुच्छलतारे के सम्बन्ध में एक महत्त्व की बात यह है कि वह  
आकस्मिक ढंग पर उदय होता है। अब यदि हम यह कहे कि  
पुच्छलतारे के उदय होने का समय उभी तरह निश्चित है जिस तरह  
सूर्य या चन्द्रमा के उदय होने का तो यह आश्चर्य की बात होगी।  
परन्तु अनुभवों से जान पड़ता है कि यह बात ठीक है। पुच्छलतारे  
का उदय होना हमें इसलिए आकस्मिक जान पड़ता है कि उनका निश्चित  
समय बड़ा लम्बा होता है और मनुष्य का जीवन थोड़ा है।  
अधिकांश पुच्छलतारे इतना लम्बा चक्कर लेकर घूमते हैं कि वह  
हमें कुछ हजार वर्षों में केवल एक ही बार दिखाई देते हैं। परन्तु  
कुछ पुच्छलतारे ऐसे भी हैं जिनका चक्कर इतना बड़ा नहीं होता  
और हम उन्हें निश्चित समय पर लौटता हुआ देखते हैं। ऐसा ही एक  
पुच्छलतारा “हैली केतु” है। इस चमकदार पुच्छलतारे को  
पहली बार इंग्लैंड के वैज्ञानिक एडमण्ड हक्सले ने १६८२ में देखा था  
और न्यूटन के गति-सम्बन्धी नियमों के अनुसार उसमें गणित-द्वारा  
यह सिद्ध किया था कि उस तारे का मार्ग क्या है। उसने पुराने उल्लेखों

के सहारे पिलले पुच्छलतारों का अध्ययन किया तो उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इस तारे का चक्कर वही था जो १५३१ और १६०७ में उदय होनेवाले पुच्छलतारों का । इससे उसने यह नतीजा निकाला कि ये पृथक्-पृथक् तीन पुच्छलतारे नहीं हैं वरन् वास्तव में एक ही पुच्छलतारा है जो निश्चित समय पर बार-बार लौटकर आता है । यह तारा प्रत्येक ७४ वर्ष में एक चक्कर पूरा कर लेता है और इसी में प्रत्येक ७५ वें वर्ष हमें दिखलाई देता है । जब हक्सले इस सिद्धान्त पर पहुँच गया तो उसने भविष्यवाणी की कि “हैलीकेतु” ७५ वर्ष बाद १७५८ में फिर दिखाई देगा । ऐसा ही हुआ । यद्यपि हक्सले स्वयं अपने वचन की सच्चाई देखने के लिए जीवित नहीं रहा परन्तु उसकी भविष्यवाणी ठीक निकली । तब से अब तक यह पुच्छलतारा प्रत्येक ७५ वर्ष के बाद १८३५ और १९१० में लौट चुका है और अब फिर १९८५ में उदय होनेवाला है ।

लगभग ३६ पुच्छलतारे ऐसे हैं जो “बृहस्पति के परिवार” के नाम से प्रसिद्ध हैं । वे इस तरह भ्रमण करते हैं कि उनके चक्कर का एक मिंग सूर्य के पास और दूसरा बृहस्पति के पास रहता है । ये पुच्छलतारे हमें प्रत्येक ३ वर्ष से लेकर ८ वर्ष के अन्तर पर बार-बार दिखलाई पड़ते हैं । ज्योतिषी इन्हें ‘बेला केतु’ (Berla's Cornets) कहते हैं ।

यह तो हुई ऐसे पुच्छलतारों की बात जो हमें नंगी आँख से दिखाई दे जाते हैं । परन्तु यदि हम दूरबीन का सहारा लें तो हमें प्रत्येक दिन कुछ पुच्छलतारे अवश्य दिखलाई पड़ जायँगे । वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारे सौरपरिवार में लगभग १०,००,००० पुच्छलतारे हैं । ये बराबर सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते रहते हैं । इनका पथ चपटा होता है और

इनका पृथ्वी से दिखलाई पड़ने का समय भी निश्चित है चाहे वह कितना ही लम्बा हो। वे बार-बार हमारे दृष्टिपथ में लौटकर आते हैं।

यदि हम एक बार इस सत्य का अनुमान कर ले तो फिर हम पुच्छलतारे से कभी नहीं डरें। पुच्छलतारे तो सदा आकाश में आते-जाते रहते ही हैं। कोई भी समय ऐसा नहीं जाता जब कुछ पुच्छलतारे आकाश में नहीं हों। फिर उनके उदय होने से दुर्घटनाओं का सम्बन्ध जोड़ना कहाँ तक ठीक है। प्रत्येक वर्ष लगभग ५ पुच्छलतारे दूरबीन की सहायता से दिखलाई दे जाते हैं। यदि हम अपनी इस बड़ी दुनिया की बात ले तो हमें पता चलेगा कि प्रत्येक पल कितनी ही छोटी-बड़ी दुर्घटनायें होती रहती हैं। इन पुच्छलतारों के उदय होने में उनका सम्बन्ध सरलता में जोड़ा जा सकता है। परन्तु पुच्छलतारे उदय होने या नहीं ये दुर्घटनायें अथवा इसी प्रकार की अन्य दुर्घटनायें अवश्य घटित होती और चाहे दुर्घटनायें होती या नहीं होती, पुच्छलतारे इसी तरह आते-जाते रहते।

## २—उल्कायें

गर्मी की रात में खुली छत पर सोनेवाले को बहुधा तारे टूटने हुए दिखाई देते हैं। चाँदनी रात में प्रतिघंटा ४ से ८ तारे तक टूटने दिखाई पड़ेंगे और अमावस की रात में इनकी संख्या १६ प्रतिघंटा तक बढ़ सकती है।

लोग तारे को टूटता हुआ देखकर बहुत भय करते हैं। हमारे यहाँ के लोगों का विचार है कि प्रत्येक तारा किसी की आत्मा को सूचित करना है और प्रत्येक तारे के टूटने के साथ कोई-न-काई आत्मा इस संसार के जाल से मुक्त हो जाती है। इसी से जहाँ टूटते हुए तारे को देखा कि

बहुत-से धर्मनिष्ठ पुरुष “राम-राम,” “हरे-हरे” आदि पुण्य-मंत्र पढ़ने लगते हैं।

परन्तु यह सब झूठा जंजाल है। तारों के टूटने के सम्बन्ध में हमें दो भ्रान्तियाँ हैं। एक तो तारे टूटने ही नहीं। जिस चीज को हम चमकता और फिर धुएँ की रेखा बनाते हुए नष्ट हो जाता देखते हैं, वह तारा नहीं है। वह उल्का है। दूसरे, मनुष्य के मसार छोड़ने में और उल्का में कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं। कदाचित् इस कारण कि लोगों को टूटते हुए तारे अधिक नहीं दिखाई देते, वे इस प्रकार का सम्बन्ध गढ़ लेते हैं। परन्तु उल्काये तो सभी समय सहस्रों की संख्या में उदय-अस्त होती रहती हैं। दिन-रात भर में कई लाख उल्काये पृथ्वी के वायु-मंडल में प्रवेश करती हैं।

ये उल्काये स्थिरपिंड नहीं हैं। ये छोटे-छोटे भ्रमणशील पिंड हैं। हमारी पृथ्वी की तुलना में ये पिंड रेत के कण से अधिक बड़े नहीं हैं।

ये ये पिंड सदैव ही आकाश में भ्रमण करने और हमारी दृष्टि में अदृश्य रहते हैं। परन्तु जब बाहरी आकाश से ये छोटे पिंड हमारे वायुमंडल में प्रवेश करने हैं तो ये वायु से रगड़ खाकर इतने गर्म हो जाते हैं कि पिघल जाते हैं और फिर भाप बन जाते हैं। धरती से ७०-८० मील की दूरी पर ही उल्का सुलगकर चमकने लगती है और जैसे-जैसे यह घने वायुमंडल में आती-जाती है, वैसे-वैसे उसकी चमक बढ़ती जाती है। जब धरती तक पहुँचने में २५-२६ मील रह जाता है तो यह जलकर समाप्त हो जाती है और गैस बनकर उड़ जाता है। टूटते हुए तारे की लम्बी फुलझडी वास्तव में जलती हुई भाप की चमक ही है।

लगभग एक करोड़ से लेकर दस करोड़ तक की संख्या में उल्कायें नित्य हमारे वायुमंडल में प्रवेश करती हैं और जलकर समाप्त हो जाती

है। इनमें से बहुतेरी इतनी छोटी होती हैं कि उनका भार छटाँक-आधी छटाँक से अधिक नहीं होता और उनकी चमक और आयु इतनी थोड़ी है कि ये हमें दिखाई नहीं पड़ती। परन्तु कुछ उल्काये २५-३० मन भारी होती हैं। ये जब वायुमंडल में पहुँचती हैं तो इतनी चमकीली हो जाती हैं कि आकाश में चाँदना-सा हो जाता है। शीघ्र ही ये टूट जाती हैं और इनमें से बादल गरजने के समान शब्द होता है। इनके छोटे-छोटे टुकड़े धरती पर गिर जाते हैं। यदि टुकड़ा बहुत छोटा हुआ तो उससे विशेष भय नहीं परन्तु बड़े-बड़े टुकड़े जिन्हें उल्का-प्रस्तर कहते हैं, बड़े-बड़े नगरों को नष्ट कर सकते हैं।

इस ब्रह्माण्ड के भीतर जितनी जगहें ग्रहों और उपग्रहों से खाली हैं उनमें ये छोटे-छोटे पिंड भरे हैं। ये पिंड अकेले चलते हैं अथवा भुंड में। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि यदि हम महाकाश की कल्पना समुद्र के रूप में करें तो ये हमें मछलियों की तरह जान पड़ेंगे।

## उल्का-प्रस्तर

कभी यह सुनने में आता है कि अमुक स्थान पर पत्थरों की वर्षा हुई है। प्राचीन पुस्तकों में इस प्रकार की वर्षा के उल्लेख मिलते हैं। इसे दैवी-प्रकोप समझा जाता है। जहाँ पत्थरों की वर्षा होती, उस स्थान के लोग बहुत भयभीत हो जाते हैं और देवताओं को शान्त करने के लिए अनेक उपाय करते हैं परन्तु ये पत्थर केवल उल्का-प्रस्तर हैं, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है। बड़ी-बड़ी उल्काये जब पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं तो वे जल उठती हैं, उनका बहुत बड़ा अंश पिघल जाता है और भाप बनकर उड़ जाता है

अथवा वे टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। इन्हें ही हमने उल्का-प्रस्तर कहा है। ये टुकड़े पृथ्वी के आकर्षण में आकर धरती पर गिर पड़ते हैं।

ये उल्का-प्रस्तर हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हैं। आकाश के अन्य पिंडों, ग्रह-नक्षत्र-धूम्रकेतु के सम्बन्ध में हम उनके प्रकाश के विश्लेषण से थोड़ा-सा जानते हैं। परन्तु इन पत्थरो पर हम रासायनिक प्रयोग कर सकते हैं और इनके द्वारा यह जान सकते हैं कि ब्रह्माण्ड के अन्य पिंड किन-किन तत्वों के बने हैं।

उल्कापात होने पर कभी-कभी एक ही बड़ा प्रस्तर पृथ्वी पर गिरता है परन्तु बहुधा अनेक टुकड़े गिरते हैं। १८६८ में पुलनस्क नामक स्थान पर लगभग १,००,००० टुकड़े गिरे पाये गये। इनमें से अधिकांश बहुत छोटे थे।

पृथ्वी पर अब तक जो उल्का-प्रस्तर पाये गये हैं उनमें सबसे बड़ा ग्रीनलैंड में मिला है। इसका वजन ३६½ टन है।

२० सितम्बर १९२८ को यू० पी० में जालौन जिले में कत नामक गाँव के पास एक उल्का-प्रस्तर गिरा था जिसका एक टुकड़ा ५० मन का था। २३ सितम्बर १९२८ के “लीडर” समाचार में इसके सम्बन्ध में जो विज्ञप्ति छपी थी उसमें इसकी भयकरता का पता चलता है। वह इस प्रकार थी:—

“यहाँ पर जालौन जिला (यू० पी०) के कत नामक गाँव के पास प्राणघातक उल्का के गिरने का समाचार मिला है। एक अमीन और उसका सहायक खेत नाप रहे थे। वे तुरन्त मर गये और एक तीसरा व्यक्ति सख्त घायल हुआ। पहले व्यक्ति की लाश का अभी तक पता नहीं चला, क्योंकि उसकी धज्जियाँ उड़ गईं। २० मील तक उल्कापात का

शब्द मुनाई पड़ा। लोग इस उल्के को परमेश्वर के क्रोध का चिह्न समझते हैं।”

परन्तु ममार के अनेक स्थानों में इसमें कहीं बड़े उल्का-प्रस्तर मिले हैं और कहीं भयानक उल्कापात हुए हैं। सबसे बड़ा उल्कापात ३० जुलाई १९०८ को साइबेरिया के येसीगाई प्रान्त में हुआ था। उस समय ऐसा जान पड़ता था जैसे आकाश में हजारों रेलगाड़ियाँ एक साथ घड़-घड़ाने लगी हो और हजारों मील तक पृथ्वी में कँपकँपी पैदा हो गई थी। १९०७ में रूसी सरकार ने प्रो० कुलिक को एक पार्टी के साथ इस उल्का-प्रस्तर की खोज के लिए भेजा। उन्होंने खोज करके पता लगाया कि उल्का-प्रस्तर-समूह पृथ्वी में धँस गये हैं जिनसे २०० में ऊपर गहरे गड्ढे बन गये हैं। इन गड्ढों में से कुछ का व्यास तो ७५ फुट से भी अधिक था। जिस जगह यह दुर्घटना हुई थी उसके १५ मील के घेरे में पृथ्वी इस तरह फट गई जैसे उसे लोहे के ३०-४० फुट के लम्बे हल से जोत दिया गया हो। सारी धरती इस तरह दिखलाई पड़ती थी जैसे तेज भट्टी में भून दी गई हो। इस घेरे के बाहर सभी दिशाओं में २०-२० मील तक पेड़ उखड़ गये थे और घेरे के बाहर की ओर झुक गये थे। कुलिक और उसके दल को बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्हें वहाँ कोई प्रस्तर नहीं मिला। परन्तु उनका अनुमान है कि एक नहीं बरन् कई उल्का-प्रस्तर थे जिनमें से कुछ तो ३-३ हजार मन के होंगे और ये धरती के बहुत नीचे धँस गये हैं। अमरीका के अरिजोना नामक स्थान में भी किसी समय ऐसा ही भीषण उल्कापात हुआ था। उससे जो भारी गड्ढा बना था उसका व्यास ४,००० फुट है और उसकी दीवार गड्ढे के पेदे से ६०० फुट ऊँची है। परन्तु यह दुर्घटना लगभग हजार वर्ष पहले हुई होगी।

जहाँ पर बड़े-बड़े उल्का-प्रस्तर गिरते हैं, वहाँ प्रलय आया समझिए। जिस तरह का उल्कापात साइबेरिया में हुआ, वैसा यदि लन्दन, न्यूयार्क या कलकत्ता पर होता तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि एक भी प्राणी उल्कापात की कथा कहने के लिए जीवित न बचता और उल्कापात के बाद कदाचित् नगर का कोई चिह्न भी नहीं रह जाता। परन्तु ईश्वर को धन्यवाद है कि ऐसे उल्कापात अधिक नहीं होते। शायद इस प्रकार के उल्कापातों से डरकर ही लोग प्रत्येक उल्का को “ईश्वर का क्रोध” समझते हैं।

रासायनिक प्रक्रियाओं से ज्ञात हुआ है कि उल्कायें तीन तरह की होती हैं। एक तो बिल्कुल पत्थर की बनी होती है। यह पत्थर घनत्व में भारी होता है और इसका रंग भूरा होता है। दूसरी तरह की उल्कायें केवल मात्र लोहे की होती हैं। इनका लोहा वैसा नहीं होता जैसा पृथ्वी पर पाया जाता है। यह लोहा रवेदार होता है। तेजाब में छोड़ने के बाद उल्का-लोह की रवादार बनावट स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगती है। तीसरी तरह की उल्काओं में लोहा और पत्थर दोनों की मिलावट होती है।

उल्काओं का लोहा बहुत शुद्ध होता है। इसलिए इनसे थोड़ा लाभ भी होता है। बिना प्रयाम के ही शुद्ध लोहा प्राप्त हो जाता है।

## उल्का-झड़ी

कभी-कभी उल्काओं की झड़ी लग जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि आकाश में लगातार अनार (आतिशबाज़ी के बारूद भरे गोले) छूट रहे हों। सारा आकाश प्रकाश-बिन्दुओं से भर जाता है। इसे उल्का-झड़ी कहते हैं। उल्का-झड़ी में उल्कायें एक ही बिंदु से आती हुई जान पड़ती

हैं परन्तु वस्तुतः वे समानान्तर रेखाओं में चला करती हैं। कुछ उल्का-भडियाँ नियमित रूप में प्रत्येक वर्ष निश्चित समय पर दिखाई देती हैं। इसमें ज्योतिष-शास्त्रियों का अनुमान है कि बहुत-सी उल्काएँ समूह बनाकर सूर्य के चारों ओर भ्रमण कर रही होंगी। जब ऐसे किसी समूह के मार्ग में पृथ्वी आ जाती है तो उल्काओं की भडियाँ लग जाती हैं।

## नक्षत्र (तारे)

यों तो आकाश असंख्य तारों से भरा हुआ जान पड़ता है; ये सब तारे लगभग समान दूरी पर ही दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु बान ऐसी नहीं है। न तो तारे इतने पास हैं जितने वे दिखलाई पड़ने हैं, न वे सब समान दूरी पर हैं। पुच्छलतारे की गति, साधारणतः २०० मील प्रतिसेकंड है। अब यदि हम यह कल्पना करें कि हम पुच्छलतारे की पीठ पर चढ़कर आकाश की यात्रा कर रहे हैं तो हमें सबसे पास के तारे पर पहुँचने के लिए ८,००० वर्ष का समय चाहिए। यह सबसे पास का तारा अल्फाकटारी है। यह बहुत ही चमकदार तारा है परन्तु यह केवल दक्षिणी गोलार्द्ध में दिखलाई देता है। हम उत्तरी गोलार्द्ध के निवासी अपने देशों से इसे नहीं देख सकते।

अल्फाकटारी के बाद के दो तारे इतने चमकदार नहीं हैं। वे नगी आँखों से दिखलाई नहीं देते परन्तु हम दूरदर्शक के सहारे उन्हें देख सकते हैं। उनके पश्चात् हमारे पास का चौथा तारा मृगव्याध है। यह इतनी दूर है कि अपने पुच्छलतारे की पीठ पर बैठकर हम ८,००० वर्ष में इस तारे तक पहुँच सकेंगे। इसके बाद पाँच मंद-मंद तारे हैं इन्हें हम केवल दूरदर्शक से देख सकते हैं। पुच्छलतारे की गाड़ी पर चढ़कर हम इन तक १०,००० वर्ष में पहुँच सकेंगे। अन्य तारे तो और भी

दूर है। ध्रुवतारे को तो आप पहचानने ही हैं। इस तक पहुँचते-पहुँचते हमें चालीस सहस्र वर्ष लग जायेंगे।

इस प्रकार हम देखने हैं कि तारे इतनी दूरी पर हैं जिसकी कल्पना भी नहीं होती। गणना की बात कौन कहे! हमारे सबसे बड़े दूरदर्शक में भी तारा बिन्दुमात्र में अधिक बड़ा दिखलाई नहीं देगा। वास्तव में दूरदर्शक की शक्ति बढ़ जाने से भी उसकी दूरी में कोई बड़ा अन्तर नहीं पड़ता। दूरदर्शक में देखने से ग्रह-उपग्रह भी नगी आँखों की अपेक्षा बड़े दिखलाई पड़ने लगते हैं, परन्तु तारा उतना ही रहता है। ग्रह और तारे में पहचान भी इसी प्रकार की जाती है। यदि प्रकाश-पिंड अधिक शक्ति के दूरदर्शक में देखने पर अधिक बड़ा दिखाई दिया तो वह ग्रह है, नहीं तो नक्षत्र। मच तो यह है कि तारों की दूरी की तुलना में हमारा सौर-परिवार और उसके सदस्यों की दूरी कुछ भी नहीं है। महाशून्य के महासागर में हमारा सौरपरिवार एक क्षुद्रद्वीप के समान है। सबसे निकट के नक्षत्र अल्फाकटाई का उल्लेख हमने पिछले पृष्ठ में किया है। पृथ्वी से जितना दूर सूर्य है, उसमें २,७२,००० गुना दूर यह तारा है। हिसाब लगाये तो यह दूरी २,५०,००,००,००,००,००० मील निकलेगी।

परन्तु इस अध्याय में हम तारों पर लिखने बैठे हैं, अतः हमें भिन्न-भिन्न तारों, तारा-समूहों और नीहारिकाओं की दूरी का निर्देश करना होगा। यदि हम कई शून्यों की एक पक्ति लिख देंगे, तो तारों आदि की सापेक्ष दूरी का भी अनुमान नहीं हो सकेगा, बुद्धि उतनी बड़ी सख्या में ही उलझ जायगी। अतः, अनन्त देश-काल को नापने के लिए एक बड़ा मापदंड बना लेना चाहिए। वैज्ञानिकों ने इस तरह का एक मापदंड बना लिया है। हम उसी को लिये लेते हैं।

प्रकाश की गति १,८६,००० मील प्रतिसेकंड है। एक सेकंड में कम समय में सूर्य की एक किरण पृथ्वी की भूमध्यरेखा (विषुवतरेखा) का मान वार चक्कर कर आयेगी। सूर्य से पृथ्वी की यात्रा करने में उसे  $\frac{1}{8}$  मिनट से अधिक समय नहीं लगेगा होगा। यदि हम इस प्रकार गणना करें तो हमें पता लगेगा कि यदि प्रकाश की एक किरण एक वर्ष तक लगातार चलती रहे तो वह ६०,००,००,००,००,००० मील की यात्रा करेगी। ज्योतिषशास्त्र में प्रकाश-किरण की एक वर्ष की यात्रा को मानदंड माना जाता है। इसे अनन्त की नाप की 'डकार्ड' समझिए।

अब यदि हम गणना करके देखें तो हम जानेंगे कि प्रकाश-किरण को सबसे निकट के तारे तक पहुँचने में  $\frac{1}{8}$  वर्ष लग जायेंगे। इसे हम संक्षेप में यों कह सकते हैं—इस तारे की दूरी  $\frac{1}{8}$  प्रकाशवर्ष है। नगी आँख से हमें जितने तारे दिखलाई देते हैं उनके आधे के लगभग ४०० प्रकाशवर्ष दूर हैं और आकाशगंगा के सबसे दूर के तारे १,००,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर हैं।

साधारण तौर पर हम अनेक शून्य-बिन्दुओं की पलटन का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु यदि हम थोड़ी देर ध्यान दें तो प्रकृति की विशालता के सम्मुख हम नतमस्तक हो जाते हैं। खुले मैदान में खड़े हुए जब हम आकाश की ओर मिर उठते हैं तो अनेक नक्षत्रों की किरणें अपनी बड़ी लम्बी यात्रा पूरी करके हमारी आँखों पर पड़ती हैं और हमारे मस्तिष्क के केन्द्रों को स्पर्श करती हैं। संभव है, अभी जो एक तारा हमें दीखा और एक विशेष किरण हमारी आँख की पुतली पर पड़ी वह उस समय चली हो जब महाराणा प्रताप हन्दीघाटी में युद्ध कर रहे थे। संभव है, यह दूसरी किरण उस समय चल पड़ी

हो जब भगवान् कृष्ण कुरुक्षेत्र के रणस्थल में अर्जुन को गीता का उपदेश दे रहे थे या, रामचन्द्र जी वन-यात्रा के लिए अयोध्या से निकल रहे थे। संभव है, तीसरे तारे की इस किरण ने तब यात्रा करनी शुरू की हो जब आदिम मनुष्य पृथ्वी पर घूमा करते थे। कितने विस्मय की बात है। मनुष्य कितना क्षुद्र प्राणी है। उसका जीवन ही कितना ! परन्तु अपने इन चर्म-चक्षुओं के द्वारा वही क्षुद्र मनुष्य अनन्तकाल और अनन्त देश का स्पर्श कर लेता है। अगणित तारों की प्रकाशकिरणें अतीत के असंख्य वर्षों और अनन्त दूरी पर बसे हुए पिंडों से उसका सम्बन्ध जोड़ती हैं। क्या मनुष्य को इसी लिए नक्षत्रों का कृतज्ञ नहीं होना चाहिए—उन्होंने हमारे जीवन को काल और देश की सीमा से मुक्त कर दिया है।

अमावस्या की रात में हम नगी आँख से दो हजार तारे आकाश में देख सकते हैं। परन्तु दूरदर्शक के सहारे देखने पर हमें कहीं अधिक तारे दिखलाई पड़ते हैं। इस तरह हम आकाश-गंगा के तारों को छोड़कर दस सहस्र में अधिक तारे देख सकते हैं। दूरदर्शक के सहारे आकाश का फोटो लेने में यह समस्या कई गुनी बढ़ जाती है। ज्योतिषियों का विश्वास है कि कुल मिलाकर दस करोड़ तारे होंगे। परन्तु यह अनुमान किया जाता है कि इसमें कहीं अधिक गुना तारे ऐसे होंगे जिनमें प्रकाश नहीं है। इन सबको मिला लेने पर तारों की संख्या ३ अरब के निकट पहुँच जायगी।

इतने तारों की गणना कैसे की जाती है, यह भी एक रोचक प्रश्न है। मच तो यह है कि ज्योतिषियों ने इनकी गणना करने का एक बहुत ही मौलिक और विचित्र ढंग निकाला है। आप जानते हैं कि तारों के सम्बन्ध में अधिक खोज उनके प्रकाश की सहायता से

होती है । इसलिए प्रकाश के अनुसार तारों के अनेक वर्ग बनाये गये हैं । सबसे अधिक चमकीले तारों को पहली श्रेणी के तारे कहते हैं । पहली श्रेणी के कुछ प्रसिद्ध तारे मृगव्याध, रोहिणी, अगस्त्य, अभिजित्, ब्रह्महृदय और स्वाति हैं । इसके बाद दूसरी श्रेणी के तारे हैं जो पहली श्रेणी के तारों से कई गुना कम चमकीले हैं । इस प्रकार प्रथम श्रेणी का तारा छठी श्रेणी के तारे की अपेक्षा सौ गुना अधिक प्रकाशित है । इन छठी श्रेणी के तारों को भी हम नगी आँखों से देख सकते हैं । परन्तु सातवीं श्रेणी के तारों को हम बड़ी कठिनाता से देख पाते हैं । परन्तु जब हम दूरदर्शक हाथ में लेते हैं तो इनके सम्बन्ध में हमें कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती । जिस प्रकार नगी आँखों से तारों की चमक देखकर हम उनकी श्रेणियाँ करने हैं, उसी प्रकार दूरदर्शक से देखकर भी हम उनकी श्रेणियाँ कर सकते हैं । इस प्रकार श्रेणियों की मर्यादा अट्ठारह तक पहुँचकर अन्त हो जाती है । सप्ताह के सबसे बड़े दूरदर्शक के द्वारा हम अठारहवीं श्रेणी तक के तारे देख सकते हैं ।

परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि दूरदर्शक में हम इन सभी तारों को आँख से देखते हैं । दसवीं श्रेणी के तारों पर पहुँचकर दूरदर्शक हमें सबसे कम प्रकाशवाले तारे दिखलाता है । इससे कम प्रकाश के तारों के लिए फोटो लेने की आवश्यकता पड़ती है । दूरदर्शक के कैमरे पर फोटो की प्लेट चढ़ाकर उसे बड़ी देर तक योही छोड़ दिया जाता है । कुछ समय बाद प्लेट हलके-हलके बिन्दुओं से भर जाता है । इस प्रकार हम दसवें परिमाण से भी सौ गुना मंद तारों को ग्रहण कर लेते हैं ।

परन्तु जितने तारों से हम इस प्रकार परिचित हो पाते हैं वह उस

संख्या की तुलना में बहुत ही कम है जो हमारे लिए फिर भी अपरिचित रह जाती है।

## आकाशगंगा और उसके तारे

चाँदनी रात में, जब आकाश में बादल नहीं हों, हमें कम-उज्ज्वल मोतियों के रंग की एक महगाव क्षितिज के एक कोने से दूसरे कोने तक जानी दिखलाई देती है। क्षितिज के नीचे उसका रूप क्या है, यह हम नहीं बता सकते। परन्तु यदि दक्षिण गोलार्द्ध की यात्रा करें, तो उसका रहस्य खुल जायगा। असल में यह प्रकाश का महगाव नहीं है बल्कि एक महान् वृत्त है जो पृथ्वी को घेरे हुए है। हमें यह लगभग अर्ध-वृत्त इसलिए दिखाई देती है कि हम आकाश का केवल आधा भाग ही एक बार में देख सकते हैं।

समर के प्रत्येक भाग में आकाशगंगा का रूप एक-जैसा दिखलाई नहीं पड़ता। किसी भाग में वह उथली नदी की तरह बहती जान पड़ती है। कहीं वह उमड़कर फैल जाती है। कहीं वह तंग हो जाती है और नेत्रों में लगभग छिप जाती है। इसके सिवा प्रत्येक स्थान पर वह एक तरह की नहीं है। कहीं उसमें घाटियाँ पड़ी हैं। कहीं काले-काले छेद हैं। कहीं जैसे अंधेरी गलियाँ हैं। कहीं उसमें भाड़-फानस लटकने दिखलाई देते हैं। वास्तव में आकाशगंगा विचित्र वस्तु है।

नीले आकाश की चित्रपट्टी पर असंख्य छोटे-छोटे कम टिमटिमाने हुए तारे छिटके पड़े हैं—इसी दृश्य को हम आकाशगंगा कहते हैं।

नगी आँखों से हम १० सहस्र से अधिक तारे नहीं देख सकते। परन्तु आकाशगंगा में ६ करोड़ ४० लाख तारे हैं। ये तारे हमें इतने पास दिखलाई पड़ते हैं कि हम उनके बीच में कोई अन्तर नहीं देखने,

परन्तु वास्तव में उनके बीच का अन्तर इतना अधिक है कि कल्पना स्तब्ध रह जाती है।

अगले अध्याय में हम नीहारिकाओं का वर्णन करेंगे। हमारी आकाश-गंगा भी ऐसी ही एक नीहारिका है। उसकी अजगर-जैसी कुडली में हम बन्द हैं। हम सारी कुडली उमटिए नहीं देख सकते कि हम उसमें बन्द हैं। फिर हम उस कुडली के केन्द्र में भी नहीं, एक किनारे पर हैं। यदि आकाशगंगा को पहिया मान लें हम हाल के पास हैं, धुरी में बहुत दूर।

## युगल तारे

यों नेत्रों में देखने पर सब तारे प्रकाशबिन्दु-मात्र दिखलाई देते हैं परन्तु यह जानकर आश्चर्य होगा कि इनमें कितने ही बिन्दु वास्तव में दो बिन्दु हैं। वास्तव में कुछ तारों की दशा ऐसे दो बालकों की है जो 'जुड़े हुए' जन्म लेते हैं। यद्यपि ये तारे इस प्रकार जुड़े हुए नहीं हैं, परन्तु ये इतने पास-पास होते हैं कि आँख में देखने या फोटो लेने पर एक बिन्दु-मात्र दिखलाई देते हैं। हम इन्हें युगल तारे कहेंगे। यहाँ पर पाठकों को एक बात के विषय में सावधान कर देना होगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि दो तारे आगे-पीछे एक-दूसरे से बहुत ही अधिक दूरी पर बसे हैं परन्तु लगभग एक ही सीधी रेखा में दिखलाई पड़ने के कारण युगल तारे-जैसे लग सकते हैं। असल में वे युगल तारे नहीं हैं।

मर्त्तपियों में दूसरा तारा वशिष्ठ वास्तव में दो तारों से मिलकर बना है। बाद को तो अनेक युगल तारों का पता चला। हमारे दो परिचित नक्षत्र—मृगव्याध और अल्फाकटारी—वास्तव में युगल तारे ही हैं। अब तो ज्योतिषियों को लगभग १५,००० युगल तारों का पता लग गया

है। कोरी आँखों से हमें जितने तारे दिखलाई देते हैं दूरदर्शक में देखने से उनमें से प्रत्येक दस में एक तारा युगल तारा अवश्य दिखलाई पड़ेगा। ज्योतिषियों का कहना है 'कि समस्त तारों में लगभग तिहाई अवश्य युगल तारे हैं।

परन्तु ऐसे युगल तारे बहुत कम हैं जिनका पता केवल दूरदर्शक के सहारे चल सके। अधिकांश युगल तारों को हम केवल वर्णपरीक्षक यंत्र के द्वारा वर्ण-परीक्षण करके ही पहचान सकते हैं।

इन युगल तारों के अध्ययन करने से गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त अधिक स्पष्ट हो जाता है। हमें सचमुच आश्चर्य हो सकता है कि दो तारे इतने पास-पास किस प्रकार रुके हुए हैं। परन्तु पता लगा है कि ये दोनों तारे एक ही केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगाते होते हैं। यह चक्कर ८ घंटे में भी पूरा हो सकता है और एक हजार वर्षों में भी। जो युगल तारे कम समय में केन्द्र की परिक्रमा कर लेते हैं वे लगभग मिले-मिले हैं, जिन्हें बहुत अधिक समय लगता है वे लाखों मील की दूरी पर हैं। इन तारों के आविष्कार ने एक दूसरी तरह नक्षत्र-विज्ञान में क्रांति उत्पन्न कर दी है। उनसे हमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसके सहारे तारों का भार मालूम किया जा सकता है। इस अध्ययन से हमें एक आश्चर्यजनक बात का पता लगा है। हमने पिछले लेख में लिखा है कि तारों के व्यास में बड़ा भारी अन्तर है; कुछ तारे बहुत छोटे हैं, कुछ देव-तुल्य हैं। परन्तु तारों के भार के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं। सबसे छोटे तारों का वजन सूर्य के वजन का तिहाई है और सबसे बड़े तारे हमारे सूर्य से तीन-गुना भारी हैं।

इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि जिन तारों का व्यास कम है उनका घनत्व अवश्य अधिक होगा। इसके विपरीत बड़े तारों

का घनत्व बहुत कम होगा। ज्येष्ठा नक्षत्र का व्यास बहुत अधिक है, अतः उसका घनत्व हमारे वायुमंडल के घनत्व का सौवाँ भाग है।

वर्ण-परीक्षण के द्वारा पता चलता है कि तीन-तीन, चार-चार बड़े-बड़े तारे एक-दूसरे की परिक्रमा करते हुए घूम रहे हैं। एक नक्षत्र-समूह में तो कम से कम छः तारे इस तरह आस-पास घूम रहे हैं। यह नक्षत्र-समूह मृगशिरा नक्षत्र-समूह के नाम से प्रसिद्ध है। कभी-कभी युगल तारे के प्रत्येक तारे में दो-दो तारे मिद्ध हो जाते हैं।

## चंचल तारे

कुछ तारे ऐसे भी हैं जिनका प्रकाश सदा एक-सा नहीं रहता, कभी बढ़ जाता है, कभी घट जाता है। परन्तु उनका प्रकाश कब बदलेगा, इसका कोई समय निश्चित नहीं है। किसी-किसी तारे का प्रकाश महीनों में बदलता है, किसी-किसी का वर्षों में। इस प्रकार के तारों को हम “चंचल तारे” कहेंगे।

चंचल तारे दो तरह के होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जिनके प्रकाश के कम-अधिक होने का समय निश्चित है। प्रत्येक चंचल तारे का अपना अलग समय है। ठीक समय आने पर उसका प्रकाश कम होने लगता है और इसी प्रकार फिर एक निश्चित समय आने पर प्रकाश बढ़ने लगता है। ऐसे तारों की चमक के कम होने अथवा बढ़ने का समय अधिक लम्बा भी नहीं है। इस पूरी प्रक्रिया में उन्हें २० दिन से अधिक नहीं लगते। परन्तु कुछ अन्य तारे ऐसे हैं जो आकार में पिछले तारों से कहीं अधिक बड़े हैं और जिनके प्रकाश के मन्द और तीव्र होने का समय इतना निश्चित नहीं है। इस पूरी प्रक्रिया में इन्हें २५० से ३३० दिन तक लग जाते हैं जिस प्रकार से मनुष्य का हृदय बढ़ता

और सिकुडता रहता है, कुछ इसी प्रकार से ये तारे भी फैलते-सिकुडते रहते हैं। परन्तु वैज्ञानिक निश्चित रूप से चंचल तारों की “चंचलता” का कारण कुछ भी नहीं बता सकते।

## नक्षत्र-समूह

मधुमक्खियों को बैठते हुए आपने जरूर देखा होगा। बीच में कुछ मक्खियाँ छत्ता बनाने में लग जाती हैं। यहाँ पर वह भुंड के रूप में दिखलाई पड़ती है। यह भुंड गोल होता है। इस भुंड को घेरकर एक बड़ी सख्या भिनभिनाती हुई उड़ती रहती है। यदि प्रत्येक मधुमक्खी को हम एक नक्षत्र समझ लें तो मधुमक्खियों के इस भुंड को देखकर हम “नक्षत्र-समूह” के रूप का अनुमान कर सकेंगे।

ऐसे सौ नक्षत्र-समूहों का हमें पता है। इनका आविष्कार हुए लगभग आधी शताब्दी बीत गई। अधिक शक्तिवाले दूरदर्शकों ने इनकी सख्या में वृद्धि नहीं की। अतः वैज्ञानिक समझने लगे हैं कि आकाश में इसमें अधिक नक्षत्र-समूह नहीं हैं। नगी ओम्ब में केवल ४-५ नक्षत्र-समूह ही दिखलाई पड़ते हैं और वे भी बड़े धुधले। दूरदर्शकों में देखने से भी इनके प्रत्येक तारे का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं हो पाता।

हरक्यूलिस और परसियस नाम के दो तारा-समूहों से हम अधिक अच्छी तरह परिचित हैं। इनका अध्ययन करने से मालूम हुआ है कि वास्तव में इन तारा-समूहों में भी प्रत्येक दो तारे के बीच की दूरी कगोड़ों मील की है। एक तरह से समूह के तारे अकेले ही हैं परन्तु जब दूर में देखे जाते हैं तो वे अकेले नहीं दिखलाई देते, वरन् भुंड या समूह के रूप में दिखलाई देते हैं।

शक्तिशाली दूरदर्शको के प्रयोग से पता चलता है कि प्रत्येक नक्षत्र-समूह में १०,००० से लेकर १,००,००० में भी अधिक तारे हैं। ये सब तारे कुछ इस तरह से स्थित हैं कि गोलाकार समूह के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। नक्षत्रमंडल की परिधि के पास तारों की संख्या बहुत कम होती है परन्तु केन्द्र की ओर यह संख्या बढ़ती जाती है। केन्द्र के पास तारों की संख्या इतनी अधिक होती है कि अलग-अलग तारों को पहचानना असम्भव है, वहाँ केवल उजाला-उजाला-मा दिखलाई देता है।

इन नक्षत्र-समूहों में कुछ चंचल तारे भी दिखलाई पड़े हैं। इनकी सहायता में पृथ्वी से नक्षत्र-समूहों की दूरी भी नाप ली गई है। हमसे सबसे पास का नक्षत्र-समूह १५,००० प्रकाशवर्ष अथवा ९,००,००,००,००,००,००,००० मील दूर है। सबसे दूर के नक्षत्र लगभग २,००,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर हैं।

## तारों की गति

गणना-गण। हम कहते हैं—ग्रह चलते हैं, तारे स्थिर हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। तारे भी गतिशील हैं, परन्तु उनकी गति ग्रहों की गति की अपेक्षा बहुत धीमी है। अतः हम उनकी उपेक्षा करते हैं। “हैली केतु” के सम्बन्ध में पीछे हम हैली का उल्लेख कर आये हैं। पहले-पहल इसी वैज्ञानिक ने बतलाया कि तारों में भी गति है। तारे इतनी दूर हैं कि हम अपनी पृथ्वी पर से उनके स्थान में कोई परिवर्तन नहीं देख पाते। परन्तु गणना-द्वारा पता लगा है कि २,५०,००० वर्ष बाद तारों की गति के कारण हमारे ऊपर के आकाश में इतना अन्तर हो जायगा कि जिन नक्षत्र-समूहों (राशियों) से हम परिचित हैं, उन्हें हम उस समय नहीं देख पायेंगे।

यदि तारे चलते नहीं होते तो पृथ्वी के चलने के कारण ही उन्हें चलता हुआ दीख पड़ना चाहिए था। जब हमारी रेल चलती होती है तो बाहर के स्थिर पेड़, मकान, पहाड़ आदि विपरीत दिशा में चलते हुए मालूम देते हैं। परन्तु तारों के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं देखी जाती।

ऋतुओं के परिवर्तन के साथ कुछ तारे अवश्य हटे-मे जान पड़ते हैं। ध्रुवतारे को हम अवश्य अटल मानते हैं परन्तु प्राचीन ग्रन्थों की खोज से यह पता चल गया है कि ध्रुव भी अटल नहीं है। वास्तव में ५,००० वर्ष पहले यह तारा हमारा ध्रुव था ही नहीं। उस समय अजगर नक्षत्र-समूह का एक तारा हमारा ध्रुव था। ५,००० वर्ष बाद सेफियस समूह का एक तारा हमारे आज के ध्रुवतारे का स्थान ले लेगा। वास्तव में आकाश में कोई भी पिण्ड ऐसा नहीं है जिसमें गति न हो।

## नीहारिकायें

तारों और आकाशगंगा पर जाकर ही हमारी सृष्टि समाप्त नहीं हो जाती। महाकाश में अन्य कितने ही आश्चर्य छिपे हैं।

जिस एक आश्चर्य के सम्बन्ध में हमें इस अध्याय में लिखना है वह उन सब आश्चर्यों से बढ़कर जिन्हें मनुष्य अब तक जान सका है या जिनकी कल्पना कर सका है। इस आश्चर्य का नाम “नीहारिका” है।

दूरदर्शक के सहारे देखने पर तारे छोटे-छोटे प्रकाश-बिन्दुओं से अधिक नहीं दिखलाई पड़ते। हमारे सबसे बड़े दूरदर्शक की शक्ति इन्हें इससे अधिक बढ़ाकर नहीं दिखा सकती। तारे महाकाश में इधर-उधर छिटके हुए बिन्दु-मात्र हैं। परन्तु दूरदर्शक के सहारे एक और तरह के

पिंड दीखते हैं जो तारों की तरह बिन्दु के आकार के नहीं हैं। वे फैले हुए ज्योति-समूह की तरह लगते हैं। देखने में ये बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं। हृदय मुग्ध हो जाता है, जैसे सामने जादू का तमाशा हो। भिन्न-भिन्न आकार के इन ज्योति-समूहों को ही हम नीहारिका कहते हैं। इनमें कुछ इतने गहरे रंग के हैं कि उनमें तारे छिप जाते हैं और हमें दिखलाई नहीं पड़ते। कुछ चमकीले, बारीक, जरी के बने हुए जाल की तरह आकाशगंगा के तारों में फैले हुए हैं। ये सब जिस तत्त्व के बने हुए हैं, वह बहुत सूक्ष्म है। परन्तु कुछ नीहारिकायें तारों के समूह-मात्र हैं जो दूरी के कारण प्रकाश के दूधिया रंग के धब्बे की तरह दिखलाई पड़ते हैं।

नीहारिकाओं की खोज इस शताब्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण खोज है। इनके अध्ययन से वैज्ञानिकों को पता लगा है कि तारों का जन्म किस प्रकार होता है, तारक-समूह किस प्रकार बनते हैं, आकाशगंगा क्या है, तथा सृष्टि का रूप क्या है और वह कितनी बड़ी है। इन प्रश्नों के उत्तर जीवन के प्रतिमनुष्य के दृष्टिकोण पर महान् प्रभाव डालते हैं। अस्तु।

कोरी आँखों से केवल एक या दो नीहारिकायें दिखलाई पड़ती हैं वह भी प्रकाश के धुंधले धब्बे के रूप में। दूरदर्शक के सहारे उनका आकार-प्रकार अधिक स्पष्टतः देखा जा सकता है। परन्तु वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इतना ही काफी नहीं है। बड़े दूरदर्शक के प्रयोग से भी अधिक सहायता नहीं मिल सकती। उसमें नीहारिका बड़ी तो दिखलाई पड़ती है परन्तु वह फिर भी इतनी धुंधली रहती है कि सब धुआँ-धुआँ-सा लगता है और उसको देखकर कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। किया यह जाता है कि दूरदर्शक में फोटोग्राफी

की प्लेट लगा दी जाती है और उसे घटो, कभी-कभी कई दिन तक, इसी तरह लगा छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार प्रकाश की मात्रा इतनी इकट्ठी हो जाती है कि चित्र में रूप-रेखाये स्पष्ट आ जाती है।

इन रूप-रेखाओं के आधार पर नीहारिकाओं की बनावट का अध्ययन किया जाता है और उनका आकार देखा जाता है। पदार्थ की स्थिति की दृष्टि से नीहारिकाये तीन प्रकार की होती है :—

(१) छिन्न-भिन्न नीहारिकाये। (२) कुंडलाकार नीहारिकाये। और (३) पेचदार नीहारिकाये।

इनमें से पहले दो प्रकार की नीहारिकाये सृष्टिचक्र के उस भाग में वर्तमान है जिसमें हमारा सौरमण्डल है। ये हमारी आकाशगंगा के भीतर है। तीसरे प्रकार की नीहारिकाये आकाशगंगा से बाहर शून्य में सर्वत्र व्याप्त है। इन अन्तिम प्रकार की नीहारिकाओं के अध्ययन ने ज्योतिषशास्त्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

पहले हम छिन्न-भिन्न नीहारिकाओं को लेते हैं। ये दो प्रकार की होती है, एक तो चमकीली, दूसरी काली।

आकाशगंगा में यहाँ वहाँ काले धब्बे दिखलाई पड़ते हैं। पुराने ज्योतिषियों का विश्वास था कि ये बड़े-बड़े छेद हैं जिनके पार हम महाशून्य को बड़ी गहराई तक देख सकते हैं। ई-ई-बर्नार्ड ने इनका अध्ययन करके इनकी गिनती १८२ ठहराई। उन्होंने यह सिद्ध किया कि ये आकाशगंगा की खिड़कियाँ नहीं हैं क्योंकि इनमें से कितने ही धब्बों की रूप-रेखायें बहुत ही स्पष्ट हैं। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि ये धब्बे वास्तव में ऐसे घने तत्त्व के बादल हैं जो पृथ्वी और अधिक दूर के तारों



आकाशगंगा नीहारिका—पृष्ठ ६६



एक बृहत् नीहारिका—पृष्ठ ६८-६९

के बीच में आ जाते हैं और उन तारों के प्रकाश को हम तक पहुँचने नहीं देते। इन्हें हम “अँधरी नीहारिकायें” कह सकते हैं।

ये अँधरी नीहारिकायें बहुत बड़ी हैं। इनमें से एक तो इतनी बड़ी है कि वह आकाशगंगा के बीच में चली जाती है और उसकी दो पट्टियाँ कर देती है। एक दूसरी नीहारिका ६० प्रकाशवर्ष लम्बी और ५ प्रकाशवर्ष चौड़ी है।\* ये नीहारिकायें गैस की बनी हैं। गैस किस प्रकार की है, यह हम नहीं जानते। परन्तु यह गैस हवा से ३० लाख गुना हलकी है। यदि एक वर्गइंच हवा को एक वर्गमील में छोड़ दिया जाय तो वह फैलकर उसे भर देगी। इस परिस्थिति में उसका जितना घनत्व होगा, उतना घनत्व इस गैस का है। परन्तु प्रश्न यह हो सकता है कि इतने कम घनत्व की गैस में से दूर के तारों का प्रकाश छन क्यों नहीं सकता। उसको बाधा क्या है? परन्तु गणितज्ञ हिसाब लगाकर बता देता है कि यदि ऐसे हलके पदार्थ का भी बड़ा बादल हो तो उसमें भी प्रकाश नहीं छन सकेगा। इतना बड़ा बादल इन नीहारिकाओं से अवश्य बन जाता है।

उजली नीहारिकाओं का आकार कहीं बहुत छोटा है, कहीं बहुत बड़ा। नई खोजों से पता चलता है कि इन नीहारिकाओं के साथ एक तारा अवश्य रहता है। कभी कभी कई तारे रहते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि ये उजली नीहारिकायें अँधरी नीहारिकाओं से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं हैं। केवल तारों की उपस्थिति के कारण उन्हें प्रकाश मिल जाता है और वे चमकने लगती हैं। कुछ नीहारिकायें तारों के प्रकाश को प्रतिफलित करती हैं और इस प्रकार चमकती

---

\* एक प्रकाशवर्ष = ६०,००,००,००,००,००० मील।

दिखलाई देती है। परन्तु जिन अन्य नीहारिकाओं के समीप बड़े तारे हैं, उनका पदार्थ तारे के प्रकाश को ग्रहण कर लेता है और जलने लगता है। इस प्रकार यह पदार्थ प्रकाशित हो जाता है।

दूसरे प्रकार की कुंडलाकार होती है। उन्हें देखने से ऐसा लगता है जैसे बीच में एक तारा है और उसे घेरे हुए गैस की एक कुण्डली है। परन्तु वास्तव में बीच में तारा रहना होगा और चारों ओर गैस के कई गोलाकार चक्र होंगे। इस प्रकार की नीहारिकाएँ अधिक नहीं हैं। अब तक ये लगभग १५० देखी गई हैं।

अब हम उन नीहारिकाओं की बात लेते हैं जो हमारे अपने सृष्टिचक्र के भाग के बाहर हैं। ये दो प्रकार की हैं—गोल और पंचदार। परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य टेढ़ी-मेढ़ी, अनिश्चित शकलों की नीहारिकाएँ भी हैं। इन सब नीहारिकाओं के सम्बन्ध में विशेषता यह है कि इनका आकार अपने वर्ग की अन्य नीहारिकाओं से भी पूरा-पूरा नहीं मिलता। वस्तुतः ये सब किसी एक ढाँचे में ढली हुई दिखलाई नहीं पड़तीं। जिन्हें हमने गोल नीहारिकाएँ कहा है, वे निश्चित रूप से गोल हों, यह बात नहीं। कुछ बिल्कुल गोल हैं, कुछ थोड़ा-सा चपटापन लिये, कुछ उभरी ताल (दर्पण) की तरह; कुछ एक किनारे से देखने पर सूत की पिंडी जैसी लगती हैं। चक्करदार नीहारिकाएँ भी अनेक प्रकार की हैं। एक ओर वे नीहारिकाएँ हैं जिनका केन्द्रभाग ("नाभि") बड़ा है और चक्कर छोटे और समीप-समीप है। दूसरी ओर वे नीहारिकाएँ हैं जिनका केन्द्रभाग छोटा है और चक्कर बड़े और फैले हुए है।

पंचदार (या चक्करदार) नीहारिकाओं के सम्बन्ध में दो विचित्रताएँ याद रखनी होंगी। एक तो पृथ्वी से उनकी दूरी के सम्बन्ध में; दूसरे उनके आकार के सम्बन्ध में। पृथ्वी से सबसे निकट की चक्करदार

नीहारिकाये ८,७०,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। अन्य नीहारिकायें इससे भी अधिक दूरी पर बसी हुई हैं। संसार के सबसे बड़े दूरदर्शक में ऐसी २०,००,००० चक्करदार नीहारिकाये दिखलाई पड़ती हैं। जो सबसे अधिक दूरी पर दिखलाई पड़ती हैं, उनकी दूरी १४,००,००,००० प्रकाशवर्ष है। इतनी दूरी की तो कल्पना भी सम्भव नहीं।

इन नीहारिकाओं का आकार भी इतना ही अद्भुत है, जितनी इनकी बनावट और दूरी। एण्ड्रोमेडा नाम की नीहारिका का व्यास ६०,००० प्रकाशवर्ष है। एम ३३ कुछ छोटी है। उसका व्यास लगभग २,००० प्रकाशवर्ष है। गणित से पता चलता है कि एण्ड्रोमेडा नीहारिका हमारे सूर्य से २७,००,००,००० गुनी भारी है। यहाँ हमारी कल्पना एक बार फिर स्तब्ध रह जाती है।

गोल निहारिकायें गैस से भरे हुए बड़े गेद की तरह हैं। उनमें किसी प्रकार का संगठन नहीं। जो क्रमशः अधिक चपटी जान पड़ती हैं, उनकी भी यही दशा है। उनमें किसी प्रकार का रचना-सौष्ठव नहीं है, केवल तत्त्व या पदार्थ-भर है। परन्तु चक्करदार या पेचदार नीहारिकाओं में यह बात नहीं। जिन चक्करदार नीहारिकाओं में नाभि बड़ी है, उनमें बीच का भाग गोल नीहारिका की भाँति रचना-सौष्ठवहीन है और भुजाये बहुधा टुकड़े-टुकड़े होकर टूटती जान पड़ती हैं। जिनकी नाभि छोटी है, उनमें केन्द्र के भाग की रेखाये अधिक स्पष्ट हो जाती हैं और वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। साथ ही भुजाये खुलती हुई और छोटे-छोटे टुकड़ों में टूटती हुई दिखलाई पड़ती हैं। गन्निगाली दूरदर्शकों से देखने पर ज्ञात होता है कि खूब खुली हुई भुजायें तारों के बादलों जैसे घने समूह की बनी हुई हैं। इन्हें हम हरशेल के शब्दों में “द्वीप” कह सकते हैं।

पीछे हम इस नतीजे पर पहुँच गये हैं कि नीहारिका का असली रूप गोले का है। परन्तु सभी नीहारिकायें गोल नहीं हैं। जो दो नीहारिकायें हमारे सबसे अधिक निकट हैं वे पाव रोटी की तरह चपटी हैं। हमारा सौरपरिवार जिस नीहारिका में है वह भी चपटी है, यद्यपि इतनी नहीं। अन्यत्र चित्र में नीहारिका के अनेक आकार दिखाये गये हैं। यदि हम गोलाकार नीहारिका से आरम्भ करें और चपटी नीहारिका तक चले तो एक अच्छी श्रेणी बन जाती है। नीहारिकाओं को इस क्रम से रखने पर हमें कई नई बातें मालूम होती हैं। जैसे सबसे अधिक चपटी नीहारिका सबसे बड़ी है और जैसे-जैसे चपटापन कम होता गया है, नीहारिकायें वैसे-वैसे छोटी होती गई हैं। चपटी नीहारिका में तारों की संख्या सबसे अधिक है, फिर चपटापन कम होने के साथ धीरे-धीरे तारों की संख्या भी कम होती गई है, यहाँ तक कि गोलाकार नीहारिका में एक भी तारा नहीं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि नीहारिका का सबसे विकसित रूप चपटी नीहारिका का है और गोलाकार नीहारिका सबसे कम विकसित है। निष्कर्ष यह है कि पहले नीहारिकायें गोलाकार नीहारिकाओं के रूप में रहती हैं, फिर कालांतर में बीच की दशाओं को पार करके चपटी हो जाती हैं।

हमने ऊपर देखा है कि चपटी नीहारिका का सबसे अविकसित रूप गोलाकार नीहारिका है। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि जब तारों का जन्म नहीं हुआ था तब नीहारिकायें इसी रूप में थीं। गोलाकार नीहारिकाओं में पदार्थ गैस के रूप में रहता है। अतः, यदि हम अपनी कल्पना को और पीछे ले जायँ तो हम यह भी समझ सकते हैं कि एक समय ऐसा था जब कोई भी नीहारिका नहीं थी। तब क्या

था ? उस समय सारा महाशून्य गैस से इस प्रकार भरा हुआ था जैसे कमरे में हवा भरी होती है । वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि शून्य भर में गैस प्रत्येक स्थान पर एक-जैसी बँटी नहीं रहेगी । वह तुरन्त ही गेदों के रूप में घनी होने लगेगी । गणित से यह सिद्ध हो गया है कि आज महाशून्य में जितनी नीहारिकाएँ हैं, शून्य के पदार्थ से उतने ही गेद बन सके होंगे ।

इससे यह धारणा बँधती है कि सृष्टि का प्रारम्भ गैस के रूप में हुआ जो महाशून्य को भरे थी और इस गैस के घनीभूत होने से नीहारिकाओं का जन्म हुआ ।

आरम्भ में महाशून्य में गैस भरी हुई थी । वह सब जगह एक-सी ही घनी थी । गैस के प्रत्येक अणु का आकर्षक अन्य अणुओं को अपनी ओर खींचता था । इसका फल यह हुआ कि धाराएँ उत्पन्न हो गईं और गति का जन्म हुआ । जहाँ कहीं इन धाराओं के कारण कुछ अधिक गैस इकट्ठी हो गई वहाँ गुरुत्वाकर्षक अधिक बढ़ गया । इससे और गैस इसमें खिंच आई । प्रकृति के राज्य में भी मरे हुए को दो लाते देने का नियम है । फल यह होता है कि छोटे-छोटे पिंड बनते हैं जो बड़े पिंड को जन्म देते हैं । यह बड़ा पिंड अधिकाधिक घनीभूत होने लगता है । कालान्तर में इस घनीभूत गैस-पिंड की रूप-रेखा अधिक स्पष्ट और निश्चित हो जाती है और वह नीहारिका का रूप धारण कर लेता है ।

हमने देखा कि नीहारिका का जन्म स्थिर-तत्त्व में गति और फल-स्वरूप धाराएँ उत्पन्न होने के कारण हुआ । इन्हीं धाराओं के कारण नीहारिका स्थिर नहीं रह पाती । वह अपनी धुरी पर घूमने लगती है । इससे वह एकदम गोल नहीं रह सकती । पहले तो वह हमारी पृथ्वी

की तरह नारंगी-जैसी चपटा हो जाती है। फिर वह सिकुड़ने लगती है और उसका रूप बराबर बदलता रहता है और वह अधिका-अधिक चपटी होती जाती है। अन्त में, नीहारिका के किनारे की गैस पिंड के रूप में घनीभूत हो जाती है और तारों का जन्म होता है। इस तरह रूपहीन नीहारिकायें तारोंवाली नीहारिकाओं में बदल जाती हैं। ये चपटी नीहारिकाये धुरी पर घूमती रहती हैं, इसलिए वे चपटी ही रहती हैं और उनके किनारों के तारे छिटककर महाशून्य में विलीन नहीं हो जाने पाते।

अभी ब्रह्माण्ड का जन्म नहीं हुआ है। यहाँ तक तो प्रक्रिया निश्चित थी। अब इसके बाद जो होता है उसमें होनहार, भाग्य या घटनाचक्र का बड़ा हाथ है। हम नीहारिका के दो तारों को लेते हैं और ब्रह्माण्ड के जन्म की ओर बढ़ते हैं। ये तारे पहले इतनी दूर थे कि एक पर दूसरे के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु किसी दुर्घटना के कारण एक तारा दूसरे के अधिक पास आगया। अब दोनों तारों के आकार और उनकी परस्पर की दूरी के अनुसार प्रतिक्रियाये शुरू हुईं। तारों की सतहों पर ज्वार की लम्बी-लम्बी लहरें उठेंगी, और उन लहरों का कुछ भाग खिचकर छोटी-छोटी बूंदों के रूप में छिटक जायगा। ये बूंदें ग्रह होंगी। हमारी पृथ्वी भी इस प्रकार की छोटी-सी बूंद है जो ऐसी ही परिस्थितियों में हमारे सूर्य से छिटक पड़ी थी। पहले ये बूंदें जलती हुई गैस-मात्र हैं। फिर ये ठंडी होती हैं और इसके बीच का भाग घनीभूत होकर द्रव का रूप धारण कर लेता है। कालान्तर में यह द्रव इतना ठंडा हो जाता है कि उसके ऊपर एक ठोस पपड़ी जम जाती है। यह ग्रह का धरातल हुआ।

जब पृथ्वी की पपड़ी और अधिक ठंडी हो गई तो एक नई बात

हुई। यह बात अवश्य ही काल या घटनाचक्र के अधीन थी। ऐसा क्यों हुआ, इस प्रश्न का हम कुछ भी उत्तर नहीं दे सकते।

अणुसमूह कुछ इस अर्थपूर्ण रचनाक्रम से मिलने लगे कि उस वस्तु का आविर्भाव हुआ जिसे हम जीवन कहते हैं। हम नहीं जानते कि जीवन क्या है और किस प्रकार पहले-पहल उसकी सत्ता का जन्म हुआ। अन्य ग्रहों में जीवन प्रकट हुआ या नहीं, यह भी हम निश्चित रूप से नहीं बतला सकते। परन्तु हमारे इस ग्रह पर अवश्य ऐसा हुआ। जीवन की एक नई विशेषता से हम खूब परिचित हैं—वह नये जीवन को जन्म देता है, उसमें प्रजननशक्ति है। यह बात सृष्टि के अब तक के इतिहास में नवीन है। जीवन के सम्बन्ध में एक अद्भुत बात यह भी है कि वह निरन्तर अधिक संगठित प्राणी को जन्म देता है।

इस प्रकार सृष्टि-रचना की अन्तिम सीढ़ी हम मनुष्य हैं। जीवना-रम्भ के फलस्वरूप पृथ्वी पर जितने प्राणियों का जन्म हुआ उनमें सबसे अधिक विकसित और पूर्ण हम हैं। इस तरह हम देखते हैं कि निरानन्द, निर्विकार महाशून्य में किसी समय जो चेतनता उत्पन्न हुई थी, वह हम तक आ पहुँची है। परन्तु यह चेतनता हमी पर समाप्त नहीं हो जाती। भविष्य आगे है ! अभी हमने महाकाल के राजपथ पर एक चरण भी आगे नहीं बढ़ा पाया है। अरबों-खरबों वर्षों का लम्बा भविष्य सामने है। जीवन, चेतनता, पदार्थ, सृष्टि—आगे इनका किस प्रकार विकास होगा, इसे कौन भविष्यद्रष्टा बता सकेगा ?

इसी से तो कवि ने कहा है—

“अनन्त मृत्यु के गर्भ से अनन्त जीवन का जन्म होता है; “अनन्त जीवन अनन्त मृत्यु में विलीन हो जाता है; “चक्र निरन्तर चलता रहता है; “परन्तु हम नहीं जानते !”

## सृष्टि

पिछले अध्यायो मे हमने सौरपरिवार, तारों, नीहारिकाओं और महाकाश के सम्बन्ध पर काफी प्रकाश डाला है। परन्तु अब एक प्रश्न हमारे सामने आता है। क्या हम उस सृष्टि की कल्पना कर सकते हैं जिसका एक भाग हमारा ब्रह्माण्ड है? उसका रूप क्या है, आकार क्या है और वह किस प्रकार सृष्टि और प्रलय को प्राप्त होती है? वह किस तत्त्व की बनी है? उसका आधार क्या है? क्या उसमे मनुष्य के लिए कोई संदेश छिपा है? आखिर इस महान् प्रपंच का प्रयोजन क्या है?

ये कुछ प्रश्न है जिनका उत्तर देने का प्रयत्न आधुनिक ज्योतिष-शास्त्र ने किया है। प्रयोगों और वर्षों के अनुभव के बल पर इन उत्तरों की सच्चाई मे बड़ी हद तक उसे विश्वास है। परन्तु नये प्रयोगों और नई खोजों से इन समस्याओं पर ऐसा प्रकाश पड़ सकता है जिससे इन उत्तरों में से कुछ को परिवर्तित रूप से रखना पड़े। परन्तु अभी तक मनुष्य ने जितना ज्ञान प्राप्त किया है, उसकी जितनी पहुँच है, उसका ध्यान रखते हुए हम शंका नहीं कर सकते।

आइए, अब तक के अध्ययन के आधार पर हम इस सृष्टि का निर्माण करने की चेष्टा करें।

हमारे अपने ब्रह्माण्ड मे, मक्षेप मे, इतने भाग है—

हमारा सूर्य।

दस ग्रह।

२६ नक्षत्र।

लगभग १,००० उपग्रह।

लगभग १०,००,००० पुच्छलतारे (धूम्रकेतु) ।

अरबों उल्काये ।

राशिप्रकाशतत्त्व \* ।

फिर हमारा ब्रह्माण्ड ऐसे ही उन अनन्त ब्रह्माण्डों में से एक है जिनसे मिलकर एक विश्व बनता है । प्रत्येक विश्व में असंख्य तारे और असंख्य तारा-पुंज हैं । हमारा अपना विश्व आकाशगंगा नाम की नीहारिका में घिरा हुआ है । हमारी इस आकाशगंगावाली नीहारिका के बाहर अनेक नीहारिकाएँ हैं जिनमें से प्रत्येक में अनेक विश्व हैं । इस प्रकार की कितनी ही नीहारिकाओं के समूह का नाम नीहारिका-पुंज है । ये नीहारिका-पुंज अनन्त आकाश में भरे पड़े हैं । इस महत् शून्य को जिसमें ये नीहारिका-पुंज स्थित हैं हम “महत् विश्व” अथवा “सृष्टि” कह सकते हैं । प्रत्येक “सृष्टि” अपने में सम्पूर्ण है । उसका अपना आकार-प्रकार और रूप है । यह अवश्य है कि वह इतनी बड़ी है कि न हम उसकी कल्पना कर सकते हैं, न उसका कोई काल्पनिक चित्र खींच सकते हैं और न मॉडल (रूप अथवा प्रतिरूप) तैयार कर सकते हैं ।

परन्तु क्या हमारी इस सृष्टि जैसी अनेक सृष्टियाँ भी हैं । सम्भव है, हो; परन्तु जहाँ तक ज्योतिष-शास्त्र के अध्ययन में पता लगता है, वहाँ तक उनके होने-न-होने से हमारी इस सृष्टि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । यदि अनेक सृष्टियाँ हुईं तो वे सब हमारी सृष्टि की तरह अपने में पूर्ण होगी और वे परस्पर स्वतंत्र होगी ।

भूगोल का पंडित अपने विद्यार्थियों को छोटे पैमाने पर मॉडल बनाकर समझाता है । आइए, सृष्टि को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए

हम भी इसी प्रकार का प्रयत्न करें। यह स्पष्ट है कि हमें अपने माप-दंड को बहुत छोटा रखना होगा। हमारी पृथ्वी सबसे छोटा ग्रह है। इसे हम इकाई मानते हैं। हम यह मॉडल दिल्ली में बनाना शुरू कर रहे हैं। अतः चांदनीचौक के घंटाघर के स्थान पर हम पृथ्वी का मॉडल रख देते हैं। पृथ्वी के इस मॉडल के लिए हम लाल घुँघची (गुञ्जा) ले रहे हैं। अब यदि इस पैमाने पर सूर्य को दिखाना पड़े तो वह व्यास में एक फुट गोले के बराबर होगा। यदि हमें इसी पैमाने पर सूर्य से पृथ्वी की दूरी स्पष्ट करना पड़े तो हमें इस गोले को घुँघची से सौ फुट दूर रखना होगा। हम अन्तिम ग्रह कुबेर को कहाँ रखें ? इस पैमाने पर हमें उसे लाहौर के आस-पास रखना होगा। अन्य सब ग्रहों का स्थान इन दोनों स्थानों के बीच में कही होगा।

अब हमारा सबसे समीप का तारा कहाँ होगा ? वह ढाई लाख मील की दूरी पर है। पैमाने के अनुसार उसे हमें लन्दन में रखना होगा। यदि हम पृथ्वी के सारे विस्तार को काम में लायें तो भी हम केवल चार तारे ही रख सकते हैं।

चलिए, पैमाना बड़ा सिद्ध हुआ। हमें और छोटा पैमाना चाहिए।

अब की बार हम बहुत ही छोटा पैमाना लेते हैं। हम एक साधारण पिन लिये लेते हैं और उसके सिर को सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की वार्षिक यात्रा का मार्ग मान लेते हैं। याद रखिए कि इस यात्रा में पृथ्वी शून्य में साढ़े अठारह करोड़ मील चल लेती है। हमारा सूर्य कहाँ होगा ? कही भी नहीं। उसे हम छोटे-से छोटे बिन्दु के रूप में भी नहीं दिखा सकते। केवल कल्पना कर लीजिए कि पिन के सिर के बीच में कही इतना छोटा बिन्दु है जिसे केवल दूरदर्शक से ही देखा जा सकता है।

आगे चलिए । हमारे अपने विश्व मे ही अनेक नीहारिकायें है जिनमे कुछ मिलाकर ४०,००,००,००,००० तारे है । यदि हम अपने छोटे पैमाने पर भी इन तारों की दूरी प्रदर्शित करना चाहें तो भी हमें अमरीका महाद्वीप के क्षेत्रफल को अपनी नीहारिका समझना पड़ेगा । परन्तु इस अपनी नीहारिका के बाहर भी अनेक नीहारिकाये है । मॉडल स्पष्ट करने के लिए हमे प्रत्येक नीहारिका को एक द्वीप का रूप देना होगा । ये द्वीप ३०,००० मील की दूरी पर चारों ओर फैले हुए है । जितनी नीहारिकाओ का हमे पता है, उन्हें मॉडल का रूप देने के लिए हमे २०,००,००० ऐसे द्वीप चाहिए, क्योंकि ज्ञात नीहारिकाओ की संख्या लगभग इतनी ही पहुँचती है । यदि हम इसमे सफल हुए तो हमारे मॉडल का विस्तार प्रत्येक दिशा मे ४०,००,००० मील होगा । इस पर हम अभी केवल सृष्टि का उतना ही भाग दिखा पाये हैं, जितनी हमारी सबसे बड़ी दूरबीन (१००" व्यास) फोटोग्राफ कर सकती है । हमारी दूरबीन की पहुँच २,५०० लाख प्रकाशवर्ष मील है । उसके बाद भी यह सृष्टि सहस्रो पद्म-खर्ब मील तक फैली हुई है ।

परन्तु इस बड़ी दूरी का स्पष्ट करना तो अलग रहा, जितना हम दूरदर्शक मे देख पाते हैं, उतने ही भाग को मॉडल के रूप मे हम प्रदर्शित नहीं कर सकते । हमारी कल्पना इस अनन्त विस्तार के सामने स्तब्ध हो जाती है ।

तो लाइए, एक बार और भी छोटा पैमाना लेकर मॉडल बनाने का प्रयत्न करें ।

इस बार हम अपनी आकाशगंगावाली नीहारिका को दिल्ली माने लेंगे । दिल्ली नगर का प्रत्येक इंच करोड़ों मील की दूरी का प्रति-

निधित्व करेगा। हमारी अपनी नीहारिका से सबसे निकट जो दो नीहारिकाये हैं उन्हें हमे मेरठ के आस-पास कहीं रखना होगा।

जरा इस पैमाने की तुलना पिछले पैमाने से कीजिए। वहाँ हमने सूर्य के चारों ओर के पृथ्वी के मार्ग को इकाई मानकर उसका मॉडल पिन का सिर रक्खा था। इस बार यह क्षेत्रफल एक इंच के ८ हजारवें भाग के व्यास के बराबर है।

इस बार हमारा साग ब्रह्माण्ड पिन के सिर के बराबर होगा। अब जितने तारे हम नंगी आँख से देख सकते हैं वह सब इस पिन के सिर के कुछ ही फुट के भीतर आ जाते हैं।

सबसे बड़े दूरदर्शक के सहारे निश्चित रूप-रेखावाली नीहारिकाओं की संख्या २०,००,००० है। इनमें जो सबसे समीप थी, उन्हें हमारे मॉडल ने दिखा दिया। परन्तु जिस भाग में हमारी नीहारिका है, सृष्टि का वह भाग कुछ अधिक घना है। अन्य नीहारिकाये इतनी पास नहीं हैं। कुछ नीहारिकाये ५० करोड़ प्रकाशवर्षों की दूरी पर हैं। उन्हें हमे दिल्ली से ३,१०० मील दूर रखना होगा। फिर कुछ नीहारिकाये ऐसी हैं जो १८० करोड़ प्रकाशवर्ष दूर हैं। इन्हें हमें ८,५०० मील की दूरी पर रखना होगा। अब हमारी पृथ्वी लगभग सारी भर गई। केवल ४,००० अर्द्धव्यास का एक वृत्त बच रहा। अभी-अभी कुछ नीहारिकाये २५० करोड़ प्रकाशवर्ष दूर पाई गई हैं। इन्हें हमे दिल्ली से १५,६०० मील की दूरी पर रखना होगा। परन्तु रखें कहाँ? क्या कोई भी स्थान दिल्ली से १५,६०० मील दूर होगा! तब हम जहाँ एक ओर से अवश्य दिल्ली से १५,६०० मील दूर होंगे, वहाँ दूसरी ओर से उसके निकट पहुँच गये होंगे क्योंकि इतनी बड़ी यात्रा में पृथ्वी की पूर्ण परिक्रमा का  $\frac{१}{४}$  भाग समाप्त हो जाता है। वास्तव

मे जिम वस्तु पर हम अपना मॉडल बना रहे हैं, अर्थात् पृथ्वी, उसने हमें असफल कर दिया। हमें कोई ऐसी चीज चुननी चाहिए थी जिस पर आवश्यकता पड़ने पर हम सीधे चलते ही रहते, और जिस स्थान से हमने चलना शुरू किया था, उससे निरन्तर दूर ही होते जाते।

अब यह स्पष्ट हो गया कि हम इस सृष्टि का कोई भी मॉडल नहीं बना सकते। हम असफल रहे।

मॉडल बनाने के इस प्रयोग से हम सृष्टि के आकार का अनुमान कर सकते हैं। हमें अब सृष्टि के आकार के सम्बन्ध में ही लिखना चाहिए, परन्तु एक विशेष कारण से पहले हम सृष्टि के रूप की बात चलायेंगे।

क्या यह सृष्टि अनन्त और असीम है ? यदि यह सृष्टि अन्तः और असीम नहीं है, तो इसका रूप क्या है ?

अनन्त और असीम सृष्टि का कोई भी चित्र मनुष्य का मस्तिष्क नहीं बना सकता। अनन्तता और असीमता का ग्रहण करना मनुष्य के ससीम मन के लिए नितान्त असम्भव है। परन्तु मनुष्य का मन ससीम सृष्टि की भी कल्पना नहीं कर सकता क्योंकि फिर प्रश्न यह उठता है कि इस ससीम सृष्टि के बाहर क्या है ?

आधुनिक ज्योतिषी इस सृष्टि को सीमावान् बन्द शून्य-पिंड की भाँति मानने लगे हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार पृथ्वी के धरातल की सीमा है, उसी तरह सृष्टि की भी सीमा है। यदि हम दिल्ली से पूर्व या पश्चिम की ओर चले और बिना मुड़े चलते ही रहे तो फिर लौटकर दिल्ली आ जायेंगे। इसी प्रकार यदि हम अपनी पृथ्वी से चलकर अनन्त आकाश में सीधे बढ़ते जायें तो

लौटकर फिर इसी ग्रह पर आ जायेंगे। इस प्रकार अब हम इस सृष्टि के पूर्ण चित्र की कल्पना कर सकते हैं।

परन्तु यह बात सिद्ध कैसे हुई? इस बात को किसी ज्योतिषी ने सिद्ध नहीं किया। इसको सिद्ध करनेवाले प्रोफेसर आईसाइन हैं। उनके प्रसिद्ध सापेक्षवाद के सिद्धान्त को यदि सत्य स्वीकार किया जाय तो फिर पृथ्वी की सतह को उसी प्रकार अपने ऊपर मुड़ जाना पड़ेगा जिस प्रकार नारंगी का छिलका अपने ऊपर मुड़ा होता है। हम जानते हैं, पृथ्वी के सम्बन्ध में यह बात सत्य है। महाशून्य भी अपने ही ऊपर मुड़ता चला गया है। अन्त में वह पृथ्वी की तरह एक गोलाकार पिंड का रूप धारण कर लेता है। परन्तु पृथ्वी की सतह जिस तरह पपड़ी (ऊपर के धरातल) से बँधी हुई है उस तरह की बात आकाश के सम्बन्ध में नहीं लागू होगी। एक तरह से उसका कहीं अन्त नहीं होता, अर्थात् हमारी सृष्टि को कोई धरातल बाँधे हुए नहीं है।

क्या हम इस सृष्टि के बाहर जा सकते हैं? यह अच्छा प्रश्न है। यदि हम पृथ्वी में एक सुरंग खोदें और खोदते ही चले जायें तो हम दूसरी ओर आकाश में निकलेंगे। यदि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण हमें उसके केन्द्र की ओर न खींचे तो हम पृथ्वी को छोड़कर बाहर आकाश में जा सकते हैं। परन्तु क्या इस तरह की बात इस गोलाकार सृष्टि के सम्बन्ध में भी संभव है? नहीं, यह असम्भव है। यदि सृष्टि पृथ्वी के धरातल की तरह है; यह कभी भी समाप्त नहीं हो सकती और हम कितना ही चलें किन्तु आकाश के बाहर नहीं जा सकते।

आधुनिक वैज्ञानिक साबुन के बुलबुले को सृष्टि का रूपक मानता है। यदि हम एक नलकी लें और उसके भीतर उस समय फूँक मारे जब उसका दूसरा सिरा साबुन की भागों में पड़ा हुआ हो तो नलकी

के सिरे पर एक बड़ा बुलबुला बनने लगता है। धीरे-धीरे यह बुलबुला गोल हो जाता है। हमारी सृष्टि साबुन के इस बुलबुले के समान है। कल्पना कीजिए कि हम और जिन पदार्थों<sup>१</sup> से किसी प्रकार परिचित हो सके हैं, वे सब इस पतली साबुन की झिल्ली में समाये हुए हैं। इस पतली झिल्ली को छोड़कर उसके बाहर या भीतर के सम्बन्ध में हम कोई भी कल्पना नहीं कर सकते। सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार शून्य इस बुलबुले की झिल्ली की भाँति ही असीम है।

अब जरा कल्पना कीजिए कि बुलबुलेवाली नलकी के उस सिरे पर कोई लड़का बराबर फूँक भर रहा है। बुलबुला गुब्बारे की तरह फूलता जायगा। बेल्जियम देश के एक वैज्ञानिक का कहना है कि हमारी सृष्टि भी इसी तरह आकार में बढ़ रही है। जैसे-जैसे यह विश्व फैलता जाता है, वैसे-वैसे पिंड—नीहारिकाये, तारे, सौरमंडल आदि—परस्पर दूर होते जाते हैं।

साथ ही जिस गति से यह विश्व फैलता है, वह लगातार बढ़ रही है। इन सब बातों का पता गणित में लगा है। परन्तु अभी कुछ समय हुआ, दूरदर्शक में कुछ नीहारिकाये अत्यन्त तीव्र गति से हमसे दूर होती हुई दिखलाई पड़ी हैं। हमारे सबसे अधिक तीव्रगामी वायुयान की गति ४०० मील प्रतिघंटा से अधिक नहीं है। ये नीहारिकाये इससे २,००,००० गुनी अधिक तेजी से हमसे पीछे हट रही हैं।

परन्तु, बहुत सम्भव है, कि नीहारिकाओं में जो कम्पन दीख पड़ता है और जिससे हम यह हिसाब लगाते हैं कि वे इतनी गति से बढ़ रही हैं, उसका कारण कुछ ऐसा हो जिसकी हमने कल्पना न की हो। यदि हमारा विश्व इतनी तीव्र गति से फैलता होता तो जिस रूप में तारों को हम आज देखते हैं, उस रूप में उन्हें आये हुए अभी उतना

समय न हुआ होता जितना उनकी आयु के सम्बन्ध में खोज करने पर सिद्ध हुआ है। ज्योतिषियों का विश्वास है कि यद्यपि यह सृष्टि इस तीव्र गति से नहीं फैल रही है जितनी इन नीहारिकाओं के अध्ययन से जान पड़ती है, परन्तु वह फैल अवश्य रही है। सम्भव है, थोड़े ही समय में वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में किसी निश्चित मत पर पहुँच जायँ।

अब हम सृष्टि के आकार पर ध्यान देंगे।

ज्योतिष-विशारदों का कहना है कि सृष्टि का आकार बहुत बड़ा है। यदि यह सृष्टि फैल रही है तो जब उसने फैलना आरम्भ किया होगा तब वह इतनी बड़ी रही होगी कि प्रकाश को उसका चक्कर लगाने में ८,०० करोड़ प्रकाशवर्ष लगेंगे। अब तक यह सृष्टि बहुत फैल चुकी है और इसलिए उसका आकार इससे कहीं अधिक होगा। अब कदाचित् प्रकाश को उसका चक्कर लगाने में ५०,००० करोड़ वर्ष लगेंगे।

चाहे यह सृष्टि फैल रही हो या नहीं, यह फिर भी मानी हुई बात है कि उसकी परिधि ८०० करोड़ प्रकाशवर्ष और ५०,००० करोड़ प्रकाशवर्ष के बीच में कहीं होगी। हम न ८०० करोड़ प्रकाशवर्षों की कल्पना कर सकते हैं, न ५०,००० करोड़ प्रकाशवर्षों की और न इन दोनों संख्याओं के बीच की किसी संख्या की। अभी तक अपने सबसे बड़े दूरदर्शक में हम आकाश में २५ करोड़ मील प्रकाशवर्ष तक देख सके हैं। इस संख्या से यह स्पष्ट है कि इतनी चेष्टा करने पर भी हम शून्य का एक बहुत छोटा अंश देख पाते हैं।

इस सृष्टि का विस्तार इतना अधिक है कि इसमें असंख्य नीहारिकायें, तारे, ग्रह-उपग्रह होते हुए भी यह खाली पड़ी है। कल्पना कीजिए कि हमारे भारतवर्ष में केवल दो मधु-मक्खियाँ उड़ रही हों। क्या हम

यह कहेंगे कि हमारा देश भरा हुआ है या हम यह कहेंगे कि वह खाली है। वस; हमारी सृष्टि भी पिंड-तत्त्व में इतनी ही भरी हुई है। अधिक कुछ भी नहीं।

जहाँ तक हमने इस सृष्टि का अध्ययन किया है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि इस विश्व के तत्त्व का अधिकांश भाग तारों के रूप में घनीभूत हो चुका है। इन तारों की संख्या अनन्त है। संसार के सभी समुद्रतटों पर पड़े हुए रेत के कणों की संख्या क्या होगी? इतनी ही संख्या तारों की है। जब हम यह बात ध्यान में लाते हैं कि छोटे-से-छोटे तारे का भार हमारी पृथ्वी से दस हजार गुना अधिक है, तो फिर असंख्य-अमख्य तारों के भार की कल्पना कैसे हो?

यह सृष्टि कब बनी, इस सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते। केवल एक दृष्टान्त देकर हम समझाने की चेष्टा करेंगे। जब हमारी पृथ्वी पर पहले मनुष्य ने जन्म लिया होगा तो यह सृष्टि इसी प्रकार रही होगी। जब इस पृथ्वी पर अन्तिम मनुष्य के दर्शन होंगे तो भी यह इसी प्रकार बनी रहेगी; कोई परिवर्तन नहीं। हमारी जाति के जीवन का अरबो-खरबों वर्षों का इतिहास इस सृष्टि के इतिहास के सम्मुख पलक झपकने के समान है।

परन्तु हम इतना समझ गये हैं कि हमारी सृष्टि का मूल-कारण आकाश-तत्त्व ही है। जिस पदार्थ को हम नीलिमा के रूप में देख रहे हैं वह अति सूक्ष्म पदार्थ-पुंज अनन्त देश में अपार सागर की तरह फैला है। उसी में एक विशेष प्रकार का आन्दोलन होता है। फलतः आवर्त बन जाते हैं। प्रत्येक आवर्त के बीच में नाभि होती है। किनारों की तरफ यह पदार्थ-पुंज घना हो जाता है और अन्त में आवर्त-

कुण्डली का रूप धारण कर लेता है। अब भी आकाश में अनियंत्रित रूप से इधर-उधर बिखरे हुए बादल दीख पड़ते हैं। इन्हीं बादलों में नई नीहारिकाओं का निर्माण हो रहा है। नीहारिका का आकाश-पदार्थ धीरे-धीरे स्थान-स्थान पर एक बिन्दु के रूप में घनीभूत होता गया। इस प्रकार तारों का जन्म हुआ। प्रत्येक तारा (नक्षत्र) एक ब्रह्माण्ड का नायक बन गया। इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्ड बने और उनकी परिक्रमा का क्षेत्र आकर्षण-नियम के अनुसार निश्चित हो गया। इस प्रकार निराकार, निरलेप, निर्वृद्ध आकाश से कुण्डलाकार नीहारिकाओं का जन्म हुआ; इन नीहारिकाओं के भीतर विश्व बने और उनके भीतर अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति हुई। समय आने पर ब्रह्माण्डों और विश्वों का नाश हो जाता है। शेष रह जाता है केवल आकाश-तत्त्व। इस प्रकार स्थिति और प्रलय की लीला चलती रहती है।

परन्तु इस अध्याय के प्रारम्भ में हमने जो प्रश्न किये थे उनमें से अनेकों का उत्तर अब भी नहीं मिला। एक सबसे बड़ा प्रश्न रह ही गया—क्या सृष्टि में मनुष्य के लिए कोई संदेश छिपा है? आखिर इस महान् प्रपंच का प्रयोजन क्या है?

कौन जाने, कोई संदेश है या नहीं। जो प्रपंच स्वयं इतना बड़ा है कि महान्-से-महान् मस्तिष्क भी उसे पूर्णतः ग्रहण नहीं कर सकता, उसके प्रयोजन की बात कैसे समझी जाय। सम्भव है, कोई प्रयोजन हो और मनुष्य कालान्तर में उसका उद्घाटन कर सके। यह भी सम्भव है, कोई प्रयोजन हो ही नहीं। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि सृष्टि का प्रपंच आश्चर्यजनक है, अद्भुत है और इस आश्चर्य का जनक आकाश है।

## वेधशालायें और सिद्धवेधक

ज्योतिष-विद्या का इतिहास कितना प्राचीन है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। योरप के प्राचीन लेखकों ने बैबलिनवालों को ज्योतिष-शास्त्र का प्रवर्तक लिखा है। ईसवी सन् से १,००० वर्ष पूर्व के कुछ ग्रंथ मिलते हैं। उनसे पता लगता है कि बैबलिन के ज्योतिषी ग्रहों-तारों आदि के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत ज्ञान रखते थे। उन्होंने आकाश में दृश्यमान नक्षत्रों को अनेक भागों में विभक्त किया था। इन भागों के नाम उन्होंने अपने देवताओं के गुणों पर रखे थे। ईसवी सन् १,००० वर्ष पूर्व अकैडियनों ने बैबलिन पर अधिकार कर लिया। उन्होंने बैबलिन-निवासियों से अनेक बातें सीखी। परन्तु उन्होंने नक्षत्रों के नाम स्वतन्त्ररूप से रखे और उन्हें श्रेणीबद्ध करने की एक अद्भुत रीति निकाली जो भारतीय राशि-कल्पना से बहुत कुछ मेल खाती है। उन्होंने परस्पर निकटवर्त्ती नक्षत्रों को एक-एक श्रेणी में रखकर प्रत्येक पुंज का नाम किसी प्रचलित पशु आदि पर रक्खा और उस पुंज में उसके आकार की कल्पना की। जब अलेक्जेंड्रिया में विश्व-विद्यालय स्थापित हुआ तो बैबलिन का ज्योतिष मिस्र देश में फैल गया। मिस्र से ज्योतिष यूनान गया। परन्तु उस समय तक पूर्व में आकाश का ज्ञान भली भाँति हो चला था। चीन के प्राचीन लेखकों का कहना है कि नक्षत्रों की प्रथम चर्चा ३,००० ईसा पूर्व में महाराज फूही के समय में आरम्भ हुई।

यूनान में इस विद्या का विशेष विकास हुआ। अरिस्टिलस (Aristyllus) ने प्रधान नक्षत्रों के स्थानों को निश्चित किया और ऐरिस्टार्कस (Aristarchus) ने सूर्य और चन्द्रमा की दूरी

निकाली। इसी ने पृथ्वी की दोनों गनियों का पहली बार आविष्कार किया। इसने कहा कि पृथ्वी अपने अक्ष (Axis) पर एक दिन में चक्कर कर लेती है और उसकी सूर्य की परिक्रमा १ वर्ष में समाप्त होती है। एराटोस्थेनीज़ (Eratosthenes) ने २३० ई० पूर्व में पृथ्वी का परिमाण निर्धारित किया। हिपार्कस (Hipparchus) ने क्रमानुसार नक्षत्रों की सूची तैयार की। सन् १५० में टॉलेमी (Ptolemy) ने भी महत्वपूर्ण काम किया। दूसरी शताब्दी से लेकर, आठवीं शताब्दी तक प्रारम्भ में ज्योतिष विद्या-सम्बन्धी ज्ञान की विशेष वृद्धि हुई। गणित ज्योतिष अरबों के हाथ में आया। इसी काल में भारतवर्ष में फलित और गणित ज्योतिष का खूब प्रचार हुआ। ईसा की १३वीं शताब्दी तक भारतवर्ष गणित ज्योतिष में मारे संसार में प्रथम रहा। परन्तु धीरे-धीरे उसने अपनी शक्तियाँ फलित की ओर लगा दी। आर्यभट्ट (४७० सन्), लल्ला (४९२), वाग्भट्ट (५०५), ब्रह्मगुप्त (५९८-६६०), श्रीधर (८५६), महावीर (८५०), आर्यभट्ट द्वितीय (९७०) और उत्पल (९७०) महान् गणितज्ञ और ज्योतिषी हुए। भास्कराचार्य ने २७ नक्षत्रों और नवग्रहों के सम्बन्ध में विशेष गणनायें उपस्थित कीं।

बहुत प्राचीन समय की वेधशालाओं के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जानते। कदाचित् पहला यंत्र धूपघड़ी हो, जिसमें एक सीधे डंडे की परछाई-द्वारा समय की नाप की जाती थी। छाया की लम्बाई के घटने-बढ़ने से सूर्य की गति के सम्बन्ध में ज्ञान किया जा सकता था। परन्तु इसके अनन्तर ऐसे यंत्रों का आविष्कार अवश्य हो गया होगा जो इतने निश्चित थे कि इनके द्वारा आकाश-पिंडों के सम्बन्ध में छोटी-मोटी गणना उपस्थित की जा सके।

योरप में पहली वेधशाला सन् १४७१ में जर्मनी के नूरेवर्ग प्रान्त में रीगिया माण्टन्स (Regiomontanes) और वाल्टर (Walter) ने स्थापित की। सन् १४७३ में निकोलस कोर्निकस का जन्म हुआ। इन्होंने सूर्यमंडल का ठीक-ठीक ज्ञान उपस्थित किया। उनके बाद टाइकोब्रेह (Tycho Brahe) ने गणित ज्योतिष में विशेष परिश्रम किया। टाइको का जन्म सन् १५४६ में हुआ था। २१ अगस्त १५६० में योरप में सर्व-सूर्यग्रहण पड़ा। इससे प्रभावित होकर टाइको ने ज्योतिष का अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १५७६ में डेनमार्क के राजा ने डेरनवर्ग नामक स्थान पर उसके लिए एक वेधशाला बनवा दी। २० वर्ष तक टाइको ने यही काम किया। उस समय तक दूर-दर्शक का आविष्कार नहीं हुआ था और इसलिए इस आविष्कारक को अपनी खोजे उसकी सहायता के बिना ही करनी पड़ी। १५९४ में इटली के पिसा नगर में गैलिलियो का जन्म हुआ। १६०९ में उसने पहली बार दूरदर्शक का मुँह आकाश की ओर किया।

गैलिलियो का दूरदर्शक रंग-दोषरहित नहीं था। उसके बाद अनेक दूरदर्शक बने। वे भी इस दोष से रहित नहीं हो सके। यदि दूरदर्शक लम्बा बनाया जाता तो यह दोष कुछ कम अवश्य हो जाता। इसी से हमें उस समय के अनेक लम्बे दूरदर्शकों का पता लगा है।

धीरे-धीरे दूरदर्शक इतने लम्बे बनने लगे कि उनका प्रयोग करना कठिन हो गया। सन् १६८० में एक ज्योतिषी ने रायल सोसाइटी को इतना बड़ा दूरदर्शक भेंट किया कि जिसकी फोकल लम्बाई १२३ फुट थी। इतने लम्बे दूरदर्शकों का प्रयोग कितना कठिन होगा, यह बात सहज में ही समझी जा सकती है। कदाचित् इसी कठिनाई को ध्यान

में रखकर न्यूटन ने १६६८ में एक नये प्रकार का दूरदर्शक बनाया । यह दूरदर्शक दर्पणमुक्त था ।

परन्तु न्यूटन के आविष्कार को आगे बढ़ाने और पूर्ण करने का श्रेय हरशेल को प्राप्त है । उस समय दर्पण बनाना बड़े परिश्रम का काम था और साथ ही अत्यन्त व्ययसाध्य भी था । बाज़ार में जो दर्पण मिलते थे, वे अत्यन्त छोटे होते थे और उनसे अधिक सहायता नहीं मिल सकती थी । हरशेल दर्पण बनाने में लग गया । अनेक दिन-रात के परिश्रम के बाद एक दिन वह २ फ़ुट व्यास का दूरदर्शक बनाने में सफल हुआ । इसी दूरदर्शक से हरशेल ने उरण नाम के ग्रह का पता लगाया था । परन्तु हरशेल इस सफलता के बाद चुप नहीं बैठा । कुछ वर्षों के बाद उसने ४ फ़ुट व्यास का दूरदर्शक बना लिया । इसके द्वारा उसने शनि के दो नये उपग्रह देखे । इसके बाद अनेक अधिक बड़े दर्पण बने और दूरदर्शक की शक्ति में वृद्धि होती रही । रॉस का अर्ल एक ६ फ़ुट व्यास का दूरदर्शक बनाने में सफल हो गया, परन्तु वह इतना बड़ा था कि उसको एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाना असम्भव था । यही नहीं, उसे स्थापित करने में भी बड़ी कठिनाई हुई ।

तालयुक्त दर्पण ने भी धीरे-धीरे उन्नति कर ली । १७५२ में डॉनैण्ड ने रंग-दोष-रहित ताल बनाने की एक रीति का आविष्कार किया । इस प्रकार आधुनिक तालयुक्त दूरदर्शकों का जन्म हुआ । परन्तु बहुत समय तक अधिक बड़े रंग-दोष-रहित ताल नहीं बन पाये । इसलिए तालयुक्त दूरदर्शक दर्पणयुक्त दूरदर्शक की प्रतियोगिता में पूरा नहीं उतरता था । उस समय इस बात की आवश्यकता थी कि अच्छा शीशा बनाया जाय । स्विट्ज़रलैंड के एक कारीगर शुनैण्ड ने इस ओर

ध्यान दिया। १८२३ में वह १८ इंच का अच्छा शीशा बनाने में सफल हो गया। गुनैण्ड के शीशे से प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्राइनहोफर ने १० इंच तक के दूरदर्शक बनाये। उसके उत्तराधिकारियों के बनाये हुए दूरदर्शक रूस और अमरीका तक पहुँचे।

अब ताल बनाने का काम आविष्कारकों के हाथ में से कारखाने-वालों के हाथ में आगया था। इसलिए उन्नति की गति अधिक तीव्र हो गई।

१८६० में क्लार्क ने १० इंच का दूरदर्शक बनाया। यह दूरदर्शक अमरीका के एक विश्वविद्यालय ने खरीद लिया। परन्तु जब यह कारखाने में ही था, तभी इसके द्वारा यह पता चला कि लुब्धक वास्तव में युगल तारा है। इस आविष्कार ने इस दूरदर्शक को अत्यन्त प्रसिद्ध कर दिया। परन्तु दूरदर्शकों की उन्नति करने में एक होड़ लगी हुई थी। दस वर्ष बाद ही टॉमस कुक ने २५ इंच व्यास का दूरदर्शक बनाकर उसकी प्रसिद्धि पर आघात कर दिया। यह दूरदर्शक अब कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में है।

इसके थोड़े ही दिनों बाद एलबन क्लार्क ने २६ इंच का दूरदर्शक बनाया। इसके द्वारा मंगल के दो ग्रहों का पता लगा। १८८६ में इसी आविष्कारक ने ३६ इंच का दूरदर्शक बना लिया। परन्तु अभी उसके और अधिक श्रेय मिलना था। १८९२ में शिकागो नगर (अमरीका) के एक करोड़पति के आग्रह से क्लार्क ने ४० इंच व्यास का दूरदर्शक तैयार किया। इस दूरदर्शक का ताल आज भी सबसे बड़ा ताल है।

१९०५ में संसार की सबसे बड़ी वेधशाला (माउंट विलसन-वेधशाला) की स्थापना हुई। यहाँ एक १०० इंचवाला दूरदर्शक है जो संसार में सबसे बड़ा है। एक अन्य ६० इंच का दर्पणयुक्त दूरदर्शक भी है। १९१८

में विक्टोरिया में ७२ इंचवाला दूरदर्शक आरोपित किया गया। इन सभी दूरदर्शकों ने आकाश के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान को इतना अधिक बढ़ा दिया है कि आज जो बातें हम जानते हैं वह चामत्कारिक कही जा सकती हैं। संसार का तीसरा बड़ा दूरदर्शक ६० इंच व्यास का है। यह भी विलसन पहाड़ पर है। यरकज-वेधशाला में ४० इंचवाला दूरदर्शक है। लिंक-वेधशाला के दर्पण का व्यास केवल ३६ इंच है। अभी कुछ समय हुआ, ओहियो-विश्वविद्यालय में ६१ इंच का दर्पणयुक्त दूरदर्शक स्थापित किया गया है।

इन बड़े दूरदर्शकों की तुलना में भारतवर्ष के दूरदर्शकों का कहीं भी स्थान नहीं होगा। अभी हमारे देश में वेधशालायें ही नहीं बनी हैं। मद्रास और शिमले में सरकारी वेधशालायें हैं जो अधिकतर स्वतंत्ररूप से काम नहीं करती। उन्होंने ज्योतिष के पुनरुत्थान के लिए कुछ भी काम नहीं किया है। देशी राज्यों में केवल हैदराबाद की अपनी वेधशाला (निजामिया वेधशाला) है जिसके दूरदर्शक का व्यास केवल १५ इंच है। यह हमारा सबसे बड़ा दूरदर्शक है।

वेधशाला, की उपयोगिता में उस स्थान के चुनाव का बड़ा हाथ होता है जहाँ वह खड़ी की जाती है। उसके लिए ऐसा स्थान चुनना आवश्यक है जहाँ वायु पूर्णतया स्वच्छ और स्थिर हो। यह सचमुच बड़ा कठिन काम है। यही कारण है कि अधिकांश अच्छी वेधशालायें पहाड़ की चोटियों पर बनी हैं। संसार की सबसे बड़ी वेधशाला माउंट विलसन पर्वत की इतनी ऊँची चोटी पर है कि वहाँ तक बादल भी नहीं पहुँच सकते। लिंक-वेधशाला हैमिल्टन पहाड़ पर है। यह पहाड़ ४,२०० फुट ऊँचा है। इतनी उँचाई तक सड़क बनाने और वहाँ तक सामान और मनुष्यों को ढीने में बड़ा धन व्यय हो जाता है। विलसन-वेध-

शाला तक सड़क बनाने में ३,००,००० रुपये खर्च हुए थे। फिर भी कई बार यंत्रों से भरी हुई गाड़ियाँ गिरकर टूट गई हैं। बड़े-बड़े दूरदर्शकों का इतनी उँचाई पर पहुँचाना सचमुच जादू का काम है।

परन्तु ज्योतिषियों की कठिनाई यहीं समाप्त हो जाये, यह बात नहीं। कभी-कभी स्वच्छ वायु की खोज में उन्हें सातो समुद्र लाँघने पड़ जाते हैं। तापक्रम प्रायः एक-सा हो। साल भर में दो-चार इंच से अधिक पानी नहीं बरसे। स्थान समुद्रतल से ७-८ हजार फीट उँचा हो। वहाँ वैज्ञानिक प्रयोगों और आवागमन की सुविधा हो। ऐसा है वह आदर्श स्थान जिसे वर्तमान ज्योतिषी प्राप्त करना चाहता है। ऐसे स्थान को ढूँढ निकालना हँसी-खेल नहीं। कहीं वादल-पानी अधिक है, कही हवा स्वच्छ नहीं है, कही आवागमन की असुविधा है। परन्तु इन सभी कठिनाइयों को लॉधकर मनुष्य ने जो महान् वेधशालायें खड़ी की हैं, वे वास्तव में 'आठवाँ आश्चर्य' है।

वर्तमान समय की वेधशालाओं का रूप भी विचित्र होता है। इसकी दीवारें वृत्त के रूप में होती हैं। यही वेधशाला का प्रधान भाग है। दीवारों के ऊपर गुम्बद की तरह अर्द्धवृत्त छत रखी होती है। यह छत वास्तव में एक नहीं होती। इसमें नारंगी की तरह फाँके रहती हैं। ये फाँकें खोली और बन्द की जा सकती हैं। जितना बड़ा झरोखा हमें चाहिए, उतना बड़ा झरोखा हम अपने सिर पर खोल सकते हैं और आकाश के प्रत्येक भाग की ओर अपना दूरदर्शक घुमा सकते हैं। छत के गुम्बद को चक्कर की तरह घुमाया भी जा सकता है जिससे उसका वातायन किसी भी ओर खुल सके। वेधशाला का प्रमुख यंत्र दूरदर्शक होता है। यह एक उँचे स्थान पर स्थापित होता है और इसका सम्बन्ध एक मशीन से होता है जो घूम सकती है। इस मशीन के घूमने के साथ दूरदर्शक भी घूम जाता

है। स्वयं दूरदर्शक में भी एक ऐसा यंत्र लगा होता है जिससे उसे थोड़ी भी मात्रा में ऊँचा-नीचा किया जा सके अथवा उसके केन्द्र पर घुमाया जा सके।

इस प्रकार स्थापित दूरदर्शक को “नाड़ी-दर्शक” (“Equatorial”) कहते हैं। इसमें यह सुगमता रहती है कि जैसे-जैसे तारा आकाश के एक भाग को पार करके आगे बढ़ता जाये, वैसे-वैसे दूरदर्शक को इस प्रकार घुमाया जा सकता है कि वह उसके क्षेत्र से निकल न जाये। तारा प्रति-दिन अपने स्थान से थोड़ा हट जाता है। इसलिए दूरदर्शक की नलकी में एक यंत्र ऐसा लगा रहता है जो उसे निश्चित गति से हटाता रहता है। यदि दूरदर्शक को एक बार किसी तारे की ओर लगा दिया जाय तो वह तारा फिर उसके क्षेत्र के बाहर नहीं जा सकता। इस दूरदर्शक में एक अन्य बिजली का यंत्र भी लगा रहता है जिसका सम्बन्ध वेधशाला के घंटे से होता है। इसके सहारे से प्रत्येक घंटे के हिसाब से दूरदर्शक की गति बाँधी जा सकती है।

(१) दूरदर्शक—ज्योतिष के प्रयोगों के लिए जो दर्शक काम में लाये जाते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के दूरदर्शक वे होते हैं, जिनमें प्रतिबिम्ब ताल के द्वारा बनता है। दूसरे प्रकार के दूरदर्शकों के बिंब का निर्माण दर्पण के द्वारा होता है। इन्हें क्रमशः तालयुक्त और दर्पणयुक्त दूरदर्शक कहते हैं।

तालयुक्त दूरदर्शक का आविष्कार पहले-पहल १६०८ में लीपर्सहे (Lippershey) ने किया। यह व्यक्ति मिडिलवर्ग में ऐनक का काम करता था। परन्तु उसको उन्नत करके उसका ज्योतिष में प्रयोग पहली बार गैलिलियो ने किया। ये दूरदर्शक आजकल के सैरबीनों (Opera-classe) की रीति पर बने थे। इनमें वस्तु बहुत अधिक बड़ी नहीं दिखलाई पड़ती

थी। प्रतिबिम्ब की रूपरेखा भी स्पष्ट नहीं दीख पड़ती थी और उसमें रङ्ग भी आ जाते। १६११ में केलेपर ने संकेत किया कि ऐसे दूरदर्शक बनाये जायँ जिनमें दो उन्नतोदर ताल लगे हों। परन्तु ऐसे दूरदर्शकों का निर्माण कई वर्ष बाद हुआ। दर्पणयुक्त दूरदर्शक का निर्माण पहले-पहल १६७० में न्यूटन ने किया। रंग दूर करने के लिए वर्णनाशक (Achromatic) ताल या आविष्कार १७३३ में चेस्टरमूर हाल (Chestermoor Hall) ने किया परन्तु उसका प्रथम बार प्रयोग १७५८ में डॉलंड-द्वारा हुआ।

दूरदर्शक यंत्र का काम दूर की वस्तुओं को स्पष्ट रूप देना है। यह बात उसके नाम से ही समझ में आ जाती है। वास्तव में इस यंत्र में तीन काम लिये जाते हैं—

(१) यह दूर की वस्तुओं को समीप, स्पष्ट और बड़ी बनकर दिखलाता है। जिन नक्षत्रों के प्रकाश इतने मंद हैं कि वे नंगी आँख से किसी भी प्रकार दिखलाई नहीं पड़ते, वे नक्षत्र इस यंत्र के सहारे देखे जा सकते हैं। यही नहीं, जिन नक्षत्रों को दूरदर्शक के सहारे देखना कठिन है, उनके भी प्रकाश-चित्र उतार लिये जा सकते हैं, यद्यपि इन काम में अधिक समय लगता है।

(२) रश्मि-विश्लेषक आदि यंत्रों के लिए दूर के नक्षत्रों का प्रकाश चाहिए। उस प्रकाश को दूरदर्शक के द्वारा ही एकत्रित किया जाता है।

(३) इस यंत्र की सहायता से किसी वस्तु की दिशा भी स्थिर की जा सकती है।

दूरदर्शक में वस्तु के आकार को बड़ा कर देने के गुण से हम सभी परिचित हैं। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि इस यंत्र के

द्वारा तारों का आकार भी बड़ा दिखलाई देता है। ऐसा नहीं होता। तारे बिन्दु-मात्र हैं। उनका आकाश शून्य समझना चाहिए। जिस प्रकार शून्य से किसी भी अंक को गुणा करने पर उत्तर में सदैव शून्य ही आता है, उसी प्रकार शून्य को कितने ही बड़े दूरदर्शक के सहारे देखा जाय, वह शून्य ही रहता है। हाँ, एक बात अवश्य होती है। जहाँ अन्य पिंडों का प्रकाश दूरदर्शक में देखने से कम हो जाता है, वहाँ नक्षत्र का प्रकाश अधिक हो जाता है। दूरदर्शक की सहायता से वे तारे भी खूब स्पष्ट और चमकीले दिखलाई पड़ने लगते हैं जो आँख से ज़रा भी दिखलाई नहीं पड़ते। यह इसलिए होता है कि दूरदर्शक में प्रकाश इकट्ठा हो जाता है। जितना बड़ा दूरदर्शक होगा, वह उतना ही अधिक प्रकाश एकत्रित करेगा। ४० इंचवाले दूरदर्शक से तारा आँख की अपेक्षा १४० सहस्रगुना चमकीला दिखलाई पड़ता है।

दूरदर्शक दो प्रकार के होते हैं, यह हम पहले बतला चुके हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस यंत्र के सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग इसके ताल तथा दर्पण हैं।

दूरदर्शक की ताल उन्नतोदर होती है। उससे छोटी वस्तु बहुत बड़े आकार की दिखलाई पड़ती है। इसी लिए बूढ़े मनुष्यों के चश्मों में इसी प्रकार के शीशे लगे होते हैं। चित्र से यह समझ में आ जायगा कि ऐसा क्यों होता है।

किताब आदि पढ़ने के लिए जो छोटे दूरदर्शक बाज़ार में मिलते हैं उनमें और ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शकों में कुछ भी अन्तर नहीं है। अन्तर केवल डील-डौल का है। वेधशालाओं में जिन तालों का प्रयोग होता है, वे साधारण तालों से १००-५० गुना अधिक बड़े होते हैं।

पीछे हमने ताल के रंग-दोष का उल्लेख किया है। यह इस प्रकार

है कि जब हम ताल के द्वारा किसी वस्तु को देखते हैं तो उसकी मूर्ति भट्टी आती है। इस मूर्ति के किनारे रंगीन होते हैं। इन्द्र-धनुष में जिस प्रकार के सात रंग दिखलाई पड़ते हैं, उसी प्रकार के रंग वस्तु को घेरे हुए जान पड़ते हैं। इसमें वस्तु का चित्र लेने अथवा उसको बेध करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। हमने यह भी उल्लेख कर दिया है कि यह कठिनाई बहुत समय में दूर हुई। इसके कारण वर्षों तक दूरदर्शक से अधिक लाभ नहीं उठाया जा सका।

अन्त में वैज्ञानिकों ने एक तरकीब निकाल ली। उन्होंने काउन शीशे के उन्नतोदर ताल के साथ फ़्लैट शीशे का नतोदर ताल जोड़ दिया। इस प्रकार रंग-दोष बहुत कुछ कम हो गया और दोनों तालों ने मिलकर उन्नतोदर का काम किया। धीरे-धीरे यह आविष्कार और अधिक विकसित किया गया। आजकल प्रत्येक दूरदर्शक में रंगदोष-रहित ताल का ही प्रयोग होता है। फिर भी थोड़ा-बहुत रंग-दोष रहता ही है। हाँ, तीन तालों का मेल बिठाकर इस रंग-दोष को इतना कम कर दिया गया है कि अब उसमें फोटो की प्लेट पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

यह तो हुई ताल-दूरदर्शक की बात। अब दर्पण-दूरदर्शक की बात लीजिए। इसके लिए भी वैज्ञानिकों को बड़ा परिश्रम करना पड़ा। वास्तव में वैज्ञानिक दर्पण की ओर रंग-दोष की कठिनाई के कारण ही भुके थे। उन्होंने देखा कि गोलाकार दर्पण से ताल का काम निकल सकता है। अतः, उन्होंने दर्पण का प्रयोग किया। हम पहले कह चुके हैं कि इसका आविष्कार न्यूटन ने किया था। परन्तु दर्पण में कलई करने की कठिनाई पड़ी। कलई अच्छी न होने के कारण दर्पण में कई एक प्रतिबिंब दिखलाई पड़ने लगते थे। अब यह त्रुटि बहुत कुछ दूर कर ली गई है। अब दर्पणों में ऊपर की सतह पर असली चाँदी की कलई की जाती है जो

लगभग छः महीने तक चलती है। इस प्रकार की कलई के फ्रीके पड़ने पर नई कलई करने में बड़ी सुविधा रहती है। पहले दर्पण की पुरानी कलई को नाइट्रिक एसिड (तेजाब) में घोलकर हटा देते हैं। फिर चाँदी के क्षार के घोल में दर्पण को छोड़ दिया जाता है। इससे उस पर चमकीली चाँदी की नई तह चढ़ जाती है। इस प्रकार वही दर्पण एक बार फिर काम के लिए तैयार हो जाता है।

परन्तु दूरदर्शक में प्रधान ताल के अतिरिक्त एक और ताल भी (अथवा दर्पण) होता है। इसमें ही आँख लगाकर देखते हैं। इसलिए इसे चक्षु-ताल कहते हैं। जिस प्रकार के पिंड को वेध करना होता है, उसके अनुसार चक्षुताल को बदला जा सकता है। सूर्य को देखने के लिए एक विशेष चक्षुताल काम में लाया जाता है। यदि साधारण चक्षुताल का प्रयोग किया जाय तो देखनेवाले की आँख ही जल जाय। इस प्रकार के चक्षुताल के लिए बिना कलई के दर्पण का प्रयोग होता है जिससे सूर्य का ताप अधिक इकट्ठा नहीं होने पाता। कभी-कभी इस प्रकार के चक्षुताल को दूसरे गहरे रंग के शीशे से ढककर ताप के प्रभाव को और भी अधिक कम कर लिया जाता है।

परन्तु दूरदर्शक-सम्बन्धी कठिनाइयाँ यही दूर नहीं हो जाती। दूरदर्शक को खुली जगह पर इस तरह स्थापित करना होता है जिससे उसे इच्छानुसार प्रत्येक दिशा में घुमाया जा सके। इसे “आरोपण” कहेंगे। वेधशाला के इंजीनियरों के लिए यह आरोपण एक बड़ी समस्या बन जाती है। यह आरोपण दो प्रकार से हो सकता है। एक का उल्लेख हम पीछे कर आये हैं। जब दूरदर्शक इस प्रकार लग जाता है तो उसे ‘नाडीमंडल यंत्र’ कहते हैं। दूसरे प्रकार का आरोपण हो जाने पर उसको ‘दृग्-यंत्र’ कहा जाता है। इनमें पहली रीति में ही अधिक सुविधा होती है।

दूरदर्शक ज्योतिषी का सबसे प्रमुख यंत्र है। वह उसके सभी यंत्रों से बड़ा होता है और उसके सहयोग के बिना अन्य यंत्र काम ही नहीं कर सकते। साथ ही धूप, वर्षा और ठंड से उसकी रक्षा करना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि असावधानी बरती जाय तो यंत्र का जीवनकाल बहुत थोड़ा हो जाता है और उस पर जो व्यय हुआ, वह व्यर्थ-जाना है। इसी लिए एक विचित्र ढग का ग्रह (दूरदर्शक-ग्रह) बनाने की आवश्यकता होती है। इसी ग्रह का नाम 'वेधशाला' है।

(२) वर्णपरीक्षक (रश्मि-विश्लेषक यंत्र)—सूर्य और तारों की अवस्था क्या है, उनमें कौन-कौन-से ऐसे तत्त्व पाये जाते हैं जिनसे हम अपनी पृथ्वी पर परिचित हैं। इन बातों का पता रश्मि-विश्लेषक यंत्र या वर्णपरीक्षक से लगता है।

इन्द्र-धनुष की चर्चा चलाते समय हमने लिखा था कि सूर्य का प्रकाश वास्तव में सफ़ेद वर्ण का नहीं होता वरन् सात रंगों का होता है। सात रंगों के मेल से ही श्वेत वर्ण बनता है। यदि हम तिपहला काँच (त्रिपाश्वर्) लें और उसके पार देखे तो बाहर की सभी वस्तुएँ सात रंगों में रेंगी दिखलाई पड़ेंगी।

परन्तु प्रकाश के उद्गम अनेक हो सकते हैं। सूर्य के प्रकाश के स्थान पर हम गैस, बिजली की बत्ती या मैगनेशियम धातु-द्वारा उत्पन्न प्रकाश ले सकते हैं। परीक्षा करने पर पता चलता है कि प्रत्येक प्रकार के प्रकाश में एक जैसे रंग नहीं होते। किसी में कोई रंग अधिक मात्रा में होता है अथवा कोई विशेष रंग होता ही नहीं। इस प्रकार हमें पता लगता है कि यदि हम जलती हुई वस्तु के प्रकाश का विश्लेषण करें तो हम बहुत कुछ यह जान जायेंगे कि वह किस वस्तु से आ रहा है। कहीं-कहीं तो इस विषय में हम बिल्कुल निश्चित हो सकते

है। आतिशबाजी में चमकदार लाल रंग खूब दिखलाई पड़ता है। इसका कारण स्ट्रानशियम धातु है। जलती हुई स्पिट के प्रकाश में कोई रंग नहीं होता। परन्तु यदि उस पर कुछ पिसा नमक छिड़का जाय तो वह पीले रंग का हो जाता है। यह सोडियम का रंग है। नमक में सोडियम का भाग प्रधान होता है। इसी प्रकार हम मैगनेशियम को भी उसके चमकदार प्रकाश से जान सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब वस्तुएँ जलकर प्रकाश देने लगती हैं तो उनमें से प्रत्येक का प्रकाश इतना विशेष होता है कि उसके द्वारा हम उन वस्तुओं को भी पहचान सकते हैं। इससे यह कल्पना की जा सकती है कि कदाचित् सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रों के प्रकाश का विश्लेषण करके हम यह जान सकेंगे कि वे किन-किन तत्वों के बने हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ससार में जितनी भी वस्तुएँ हैं उनका अपना-अपना पृथक् वर्ण है। शर्त यह है कि यह रंग हमें उसी समय दिखलाई देता है जब वस्तु गैस की दशा में बदल गई हो या स्वयं गरम गैस हो। वर्णपरीक्षक से यह बतलाया जा सकता है कि प्रत्येक वर्ण क्या है और वह किस मौलिक तत्त्व का वर्ण है।

वर्णपरीक्षक यंत्र के दो भाग होते हैं। एक ओर कॉलिमेटर होता है। यह किरणों को समानान्तर बनाने का काम करता है। दूसरा भाग किरणमापक कहा जा सकता है। इसमें नली के एक ओर एक तिपहला काँच (त्रिपाश्वक) लगा होता है और उसके सामने एक छोटा दूरदर्शक लगा होता है। कॉलिमीटर के मुख पर एक लम्बा छेद या शिगाफ होता है जिसे छोटा-बड़ा बनाया जा सकता है। यदि इस शिगाफ के सामने जलती गैस रख दी जाय या बिजली की बत्ती अथवा चिराग की लौ हो तो इस यंत्र के भीतर किरणों का जो चित्र होगा, उसमें भिन्न-भिन्न

रंगों के पट पर कम या अधिक दूरी पर कुछ विशेष चमकीली रेखाये दिखलाई पड़ेंगी। प्रत्येक रेखा एक विशेष धातु की परिचायक है। यह आश्चर्य की बात है कि विश्व के प्रत्येक मौलिक पदार्थ के लिए एक निश्चित रेखा है। हर एक पदार्थ की रेखा दूसरे पदार्थ की रेखा से भिन्न रंग की है और मूल सात रंगों के पट पर अलग-अलग सदा अपने विशेष स्थान पर दिखलाई देती है। इन रेखाओं के कारण सूर्य के वर्ण-चित्र में कोई भी रंग अवाच्छिन्न नहीं रह पाता। इनमें कुछ रेखाये अधिक काली और मोटी होती हैं, कुछ इतनी सूक्ष्म कि आश्चर्य होता है। फिर कही इन रेखाओं की सख्या अधिक है, कहीं कम। यदि किसी अच्छे वर्णपरीक्षक से देखें तो सूर्य के रश्मिचित्र में ये रेखाये सैकड़ों और हजारों की सख्या में दिखलाई पड़ेंगी। एक प्रकार से ये काली रेखाये भी सूर्य के वर्णचित्र के लिए इतनी ही स्वाभाविक जान पड़ती हैं जितने सूर्य के प्रकाश के सात रंग।

इन काली धारियों में आविष्कारों में किस प्रकार सहायता मिलती है। अब हम इस सम्बन्ध में लिखेंगे। रश्मि-चित्र में एक रेखा 'द' कहलाती है। वास्तव में यह दो रेखाओं की बनी है। इन दोनों रेखाओं के बीच में बड़ा सूक्ष्म अन्तर है और इनमें से एक दूसरी से अधिक गहरी काली है। कल्पना कीजिए कि आप इन रेखाओं (द) पर अपना ध्यान जमाये हैं। उसी दशा में यंत्र के सामने स्पिक्ट-लैम्प की वर्णहीन लौ रख दी जाती है और उस पर कुछ पिसा नमक छिड़का जाता है। अब सूर्य की रश्मि को नमक-द्वारा उत्पन्न पीली लौ के भीतर से होकर जाना पड़ता है। तब 'द' रेखायें अधिक गहरी और स्पष्ट हो जाती हैं। यद्यपि वर्णपट पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ प्रयत्नों के पश्चात् यह सिद्ध हो जायगा कि 'द' के गहरे हो जाने का कारण सोडियम की प हैभा (सोडियम नमक में वर्तमान रहता है)। अनुमान यह होता है

कि सोडियम और 'द' रेखाओं में अवश्य कुछ सम्बन्ध है। अब यदि सूर्य की रिश्म को हटा दिया जाय तो उसी स्थान पर जहाँ काली 'द' रेखाये थी, दो चमकदार 'रेखाये दिखलाई पड़ेंगी। वास्तव में सोडियम की लौ सूर्य के प्रकाश को फ्रीका कर देती है और इन 'द' रेखाओं को कुछ और प्रकाश देती है। यही कारण है कि सोडियम की लौ के आगे ये रेखाये फ्रीकी हो जाती है।

वर्णपरीक्षक-द्वारा किये गये इस प्रकार के प्रयोगों को आगे बढ़ाने से यह पता चलता है कि सोडियम की भाप में यह गुण है कि जब वह गरम होती है तो उसमें से एक विशेष प्रकार का प्रकाश निकलता है। वर्णपरीक्षक में देखने से यह प्रकाश केवल दो रेखाओं (द) में सीमित दिखलाई पड़ता है। परन्तु इस भाप का एक विशेष गुण यह भी है कि उसमें इसी प्रकार के प्रकाश को रोक रखने की शक्ति है। सूर्य के अनेक वर्ण उसमें से छन जाते हैं, परन्तु इन दो रेखाओं के वर्ण नहीं छनते। फलतः, वहाँ हम काली रेखाये देखते हैं। वर्ण-परीक्षक के लिए यह विशेषता महत्त्वपूर्ण है। अन्य तत्वों की परीक्षा करने में भी यही बात सिद्ध हुई है। प्रत्येक तत्व में यह गुण है कि गरम होने पर वह एक विशेष प्रकार का प्रकाश देता है और उसमें से उसी प्रकार का प्रकाश छन भी नहीं पाता। लोहे को लेकर परीक्षा करने पर भी यही बात सिद्ध होती है। जलते हुए लोहे के सामने वर्णपरीक्षा करने पर उसके द्वारा बनाये चित्र में सैकड़ों चमकदार धारियाँ पड़ जाती हैं। सूर्य के 'वर्णपट' में भी इसी स्थान पर काली धारियाँ हैं। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि सूर्य में लोहे की भाप मौजूद है।

इस प्रकार की धारियों को फ़्रानहोफ़र रेखायें कहते हैं क्योंकि इनका आविष्कार इसी नाम के वैज्ञानिक ने किया। प्रयोगों-द्वारा सिद्ध

हुआ है कि सूर्य पर हाइड्रोजन, सोडियम, वेरियम, केलशियम, मेगनेशियम, एल्यूमीनियम, लोहा, मेन्गनीज़, क्रोमियम, कोबाल्ट, निकल, जस्ता ताँबा, गिट्टेनियम, केडमियम, स्ट्रान्शियम, केरियम, डरेनियम, शीशा और पोटेशियम नाम की धातुएँ मौजूद हैं। इस अनुसंधान में जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक किर्शॉफ का नाम उल्लेखनीय है।

वर्णपरीक्षक का आविष्कार १८१० में हुआ। इस आविष्कार ने ज्योतिष-विद्या में क्रान्ति उपस्थित कर दी। उसके द्वारा हमारे सूर्य, ग्रहों और तारों के अध्ययन में इतनी वृद्धि हुई जितनी कभी पहले नहीं हो पाई थी।

सूर्य के अध्ययन में हमने उभरी महान् ज्वालाओं का उल्लेख किया है। वर्ण-परीक्षक यंत्र के सहारे Janssen (जेनसीन) और Lockyer (लॉकइयर) ने एक नई रीति निकाली जिसमें सूर्य की ज्वालायें कभी भी देखी जा सकती हैं। वैसे इनका दर्शन केवल सर्व-सूर्यग्रहण के समय ही होता था। वर्णपरीक्षक की यह विशेषता है कि हम उसे सूर्य के किसी भी भाग की ओर मोड़ सकते हैं और इस तरह हमने आश्चर्यजनक बातों का उद्घाटन किया है। सूर्य के भिन्न-भिन्न भागों के वर्णपट में अन्तर है। इससे प्रकट होता है कि भिन्न-भिन्न भागों के निर्माण में भिन्न-भिन्न तत्त्वों ने भाग लिया है। वर्णपरीक्षक के द्वारा यह पता लगा है कि वास्तव में ये ज्वालाये जलती हुई हाइड्रोजन हैं। इन ज्वालाओं का प्रकाश हाइड्रोजन की रेखाओं में ही सीमित रहता है। सूर्य के किनारों की ओर वर्णपरीक्षक को मोड़ने से ये ज्वालायें स्पष्ट हो जाती हैं।

तारों के अध्याय में हमने उनके प्रकाश के सम्बन्ध में कहा है। तारों के प्रकाश का अध्ययन वर्णपरीक्षक-द्वारा ही होता है। इस अध्ययन के आधार पर तारों के कई भेद किये गये हैं।

(१) पहली जाति के तारे वे हैं जिनका प्रकाश अत्यन्त स्वच्छ होता है (उदाहरण के लिए अभिजित और मृग-व्याध)। इन तारों के वर्णपट में काली रेखाये तुलना में कम दीखती हैं। हाइड्रोजन की रेखाये प्रमुख है। सोडियम और मेगनेशियम धातुओं की रेखाये अत्यन्त अस्पष्ट हैं। फोटो लेने पर यह निश्चित हो गया है कि इन तारों पर हाइड्रोजन का अस्तित्व अवश्य है।

(२) दूसरी जाति के तारे वे हैं। जिनका वर्णपट लगभग सूर्य के वर्णपट जैसा है (उदाहरण के लिए Capella और Aldebaran)। इनमें भी हाइड्रोजन की रेखाये प्रमुख हैं, परन्तु अनेक धातुओं की रेखाये भी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

• (३) तीसरी जाति के तारों के वर्णपट में धातुओं की रेखाये और भी प्रमुख हो जाती हैं। इनकी विशेषता यह है कि उन पर हाइड्रोजन नहीं आन पड़ता क्योंकि वर्णपट पर उसकी रेखाये नहीं दीखती (उदाहरण के लिए,  $\alpha$  Orionis अथवा Betelgeuze)।

वर्णपरीक्षक में एक महत्वपूर्ण आविष्कार युगल तारों का हुआ है। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर पिकरिंग का काम महत्वपूर्ण है। ये युगल-तारे इतने पास हैं कि अच्छे से अच्छे दूरदर्शक में ये एक ही तारा दिखलाई पड़ते हैं। यदि हमारा भविष्य का दूरदर्शक आज के दूरदर्शक से हजारगुना अधिक शक्तिशाली हो, तो भी उन्हें अलग-अलग करना असम्भव था। इनमें से प्रत्येक तारा दूसरे को घेरकर घूमता है। फलतः, जब एक तारा पृथ्वी के समीप आता है, तो दूसरा उतना ही हट जाता है। वर्णपरीक्षक के द्वारा उनके प्रकाश वर्णपट पर लिये जाने पर यह पता चलता है कि जो तारा पृथ्वी से अधिक समीप है उसकी रेखायें कुछ अधिक हटी होती हैं। फल यह होता है कि कभी-कभी दो रेखायें

(जोड़े) दिखलाई पड़ती हैं। इससे ही इनके युगलत्व का पता चलता है। वर्णपरीक्षक के द्वारा यह भी पता लगा है कि एक युगल तारा दूसरे युगल तारे का चक्कर कितने समय में लगा लेता है।

यही नहीं, इस यंत्र के द्वारा तारों की गति का भी पता चलता है। गति के अनुसार तारों के वर्णपट की रेखाएँ आगे-पीछे हटती-बढ़ती रहती हैं। यद्यपि यह अन्तर बहुत कम होता है, परन्तु उसमें यह गणना कर ली जाती है कि तारा कितनी गति में पृथ्वी की ओर बढ़ रहा है अथवा उससे हट रहा है। इससे हम युगल तारों के चक्र का विस्तार भी जान सकते हैं और उनकी तौल भी निश्चित कर सकते हैं। यह बान आश्चर्य-जनक जान पड़ती है परन्तु जहाँ विज्ञान ने अनेक आश्चर्यों का सृजन किया है, वहाँ एक यह भी है। हम पृथ्वी के साधारण प्राणी अनन्त आकाश में अनन्त दूरी पर स्थित पिंडों का भार केवल उनके प्रकाश से स्थिर कर सके, इससे अधिक बड़ा आश्चर्य और क्या होगा ?

(४) एक अन्य महत्वपूर्ण यंत्र Meridian Circle है। इस यंत्र का प्रधान भाग दूरदर्शक ही है परन्तु यह एक अद्भुत रीति से स्थापित होता है। उसका सम्बन्ध एक धुरी में है जिसके ऊपर वह टिका होता है। इस प्रकार यंत्र केवल किसी एक विशेष देशान्तर में ही घुमाया जा सकता है। दूरदर्शक के ताले पर बहुत छोटे तारों फैलाये जाते हैं। दर्शक देखता रहता है कि कब चन्द्रमा, तारे या ग्रह ने किसी तारे को काटकर दृष्टिक्षेत्र में प्रवेश किया। वह एक सेकंड के शतांश तक इस घटना का समय लिख लेता है। धुरी पर चाँदी का वृत्त लगा होता है। इसके अनेक भाग किये जाते हैं। यह वृत्त भी दूरदर्शक के साथ-साथ घूमता है। इसमें सूक्ष्मतम गणना की जा सकती है।

यंत्र के मुख पर जो तागे होते हैं, वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। इतने सूक्ष्म तागे हम तैयार नहीं कर सकते। कोई-कोई तारा अत्यन्त ही क्षुद्र बिन्दु होता है और उसको देखने के लिए और उसका स्थान स्थिर करने के लिए मकड़ी के बारीक जाले के सिवा अन्य किसी वस्तु से काम ही नहीं चल पाता। मकड़ी के बारीक जाले को ताल के मुख पर फैलाने में बड़ी कठिनाई होती है। यह ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं जाला अधिक फैल न जाय और उसके सच्चे कोण बिगड़ न जायें। जब कोई तागा दिखलाई पड़ता है तो दूरदर्शक का घुमाकर उसे इस जाले के बीच की दो काटती हुई रेखाओं के बिन्दु पर कर देते हैं। इस यंत्र के साथ अनेक ऐसे यंत्र लगे होते हैं जिनका काम अत्यन्त सूक्ष्म गणना करना है। घंटे के द्वारा समय मालूम होता है। हम जानते हैं कि सेकिड के कितने अंश पर किसी तारे ने प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त एक चिह्नित वृत्त ही होता है जिससे आकाश की उँचाई को भी पढ़ा जा सकता है। इन यंत्रों की सहायता से हम विशेष अवस्था में दूरदर्शक की स्थिति निश्चित कर लेते हैं।

(५) वेधशाला में और भी अनेक यंत्र रहते हैं जो आकाश को वेध करने के लिए किसी न किसी प्रकार आवश्यक हैं। इनमें Altazinutt, Chronograph, Mirometer (Filar) और Helimeter प्रमुख हैं। यहाँ पर हम इन यंत्रों का परिचय देना आवश्यक नहीं समझते। परन्तु इन यंत्रों का आविष्कार और उनका विकास प्रत्येक सर्वसाधारण को आश्चर्य-जनक प्रतीत होगा। इनके अध्ययन के बिना वर्तमान ज्योतिष का ज्ञान अपूर्ण है। वास्तव में खगोल-शास्त्र के सारे चमत्कारों का उद्घाटन इन्हीं आविष्कारों के कारण सम्भव हो सका है।

परन्तु हमें एक यंत्र के विषय में लिखना आवश्यक मालूम होता है। यह यंत्र नाक्षत्र कैमरा है। वर्तमान ज्योतिष में कैमरे का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(६) दूरदर्शक कैमरा (नाक्षत्र कैमरा)—मिद्धान्त में यह यंत्र साधारण कैमरा की भाँति ही होता है परन्तु यह आकाश के अध्ययन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साधारण कैमरा में एक ओर लेन्ज (ताल) लगा होता है और दूसरी ओर प्लेट। दूरदर्शक कैमरा भी ऐसा ही होता है। इसमें भी एक ओर ताल रहती है और दूसरी ओर प्लेट। फोटो लेते समय दूरदर्शक की चक्षु-ताल निकाल लेते हैं और उसके स्थान पर प्लेटधर लगा देते हैं। बड़े दर्शकों में इस तरह बड़े-बड़े चित्र लिये जा सकते हैं। परन्तु छोटे दूरदर्शकों में इस रीति से काफी बड़ा चित्र नहीं आ सकता। इसलिए प्लेट और प्रधान ताल के बीच में एक दूसरा ताल लगा देते हैं। इससे चित्र बड़े आकार का आता है।

परन्तु दूरदर्शक में आकाश का बहुत छोटा भाग दिखलाई पड़ता है। आकाश के किसी बड़े भाग का चित्र एक साथ उतारना हो, तो इस प्रकार का यंत्र बेकार है। अतः इसके लिए विशेष नाक्षत्र कैमरों का आविष्कार हुआ है। दूरदर्शक की बगल में छोटे फोकल लम्बान के ताल के बने कैमरे बाँध दिये जाते हैं। इनमें और साधारण कैमरों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। यह अवश्य है कि ये कैमरे अधिक मजबूत होते हैं। इनके ताल बड़े भारी होते हैं।

नाक्षत्रों का फोटो लेना सरल नहीं है। नाक्षत्र स्थिर नहीं रहते। इसलिए कैमरे को भी उनके पीछे-पीछे घिबटना पड़ेगा। इसी लिए नाक्षत्रों का चित्र उतारने के लिए नाड़ी-मण्डल दूरदर्शक का प्रयोग किया जाता है और उसे घड़ी से चलाया जाता है। परन्तु घड़ी की चाल में जरा-सा

अन्तर आने पर भी नक्षत्र दृष्टि-पथ के बाहर हो सकता है। इसलिए फोटो लेनेवाले दूरदर्शक के साथ एक दूसरा दूरदर्शक भी उसी तारे को वेध करता रहता है। जहाँ घड़ी की चाल में अन्तर पड़ा तो पास के वेधक ने बिजली का बटन दबाकर घड़ी को ठीक कर दिया और नक्षत्र कैमरे की प्लेट के ठीक केन्द्र में बना रहा।

सबसे पहले फ्रैंकलिन ऐडम्स ने अपने कैमरे के सहारे सारे आकाश के २०६ चित्र उतारे। अब ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि केवल ७५ चित्रों में सारा आकाश आ जाता है। इस प्रकार के प्रयोग से संसार की लगभग सभी वेधशालाओं की सहायता माँगी जाती है। पिछली बार जब इस प्रकार के चित्र उतारे गये थे तो भारतवर्ष की निजामिया वेधशाला ने भी सहयोग किया था। अब हार्डबर्ड-वेधालय में इस प्रकार के प्लेट संगृहीत है। इन प्लेटों से ज्योति के ऐतिहासिक अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है और अनेक नये तारों का पता लग जाता है। इस प्रकार के चित्र समय-समय पर ले लिये जाते हैं और पिछले चित्रों से मिलान करने पर अनेक रहस्यों का उद्घाटन होता है। अनेक वेधशालाओं में इन कैमरों-द्वारा नित्यप्रति सूर्यकलंको का फोटोग्राफ़ लिया जाता है। कभी-कभी ये चित्र अनेक भ्रम भी उपस्थित कर देते हैं। जैसे, यदि किसी कारण प्लेट पर कुछ काले विन्दु बन गये तो उन्हें नक्षत्र मान लिया। इस प्रकार की त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। एक प्लेट पर तीन फोटो लिये जाते हैं। इस तरह प्रत्येक नक्षत्र के लिए तीन सटे-सटे विन्दु आते हैं। इस प्रकार हम नक्षत्र को अन्य किसी कारण से उत्पन्न विन्दु से अलग कर सकते हैं।

तारों के फोटो के लिए प्रकाशदर्शन का समय इतना लम्बा होता है कि हमें आश्चर्य होता है। साधारण फोटो के लिए प्रकाशदर्शन केवल कुछ

ही क्षणों के लिए होना चाहिए। परन्तु तारों का प्रकाश इतना कम है कि उनके लिए घंटों और कभी-कभी दिनों का लम्बा प्रकाश-दर्शन चाहिए।

परन्तु तब एक दूसरी कठिनाई सामने आती है। तारे पूर्व की ओर से निकलकर पश्चिम की ओर जाते दीखते हैं। अब यदि साधारण कैमरे का मुख उत्तरी ध्रुव की ओर करके उसे आध घंटे तक यों ही छोड़ दिया जाय तो जो चित्र उतरेगा उसमें प्रत्येक तारा ध्रुव के चारों ओर चक्कर लगाना दिखलाई पड़ेगा। इसका प्रतिकार कैसे हो ? इस समस्या का हल ज्योतिषियों ने इस प्रकार किया है कि वह अपने दूरदर्शक को सदैव ध्रुव की ओर रखता है। दूरदर्शक में एक घड़ी लगी रहती है जिसकी सहायता से हम दूरदर्शक को हाथ से बिना छुए चला सकते हैं। यह ध्यान रखना पड़ता है कि यदि कोई तारा दूरदर्शक में इस समय दिखलाई देता हो तो आध घंटे बाद भी दिखलाई दे। बेचारा ज्योतिषी भी साथ के दूरदर्शक में भाँकना रहता है। यदि तारा फोकस में से निकलने लगा तो वह दूरदर्शक चालक को संदेश भेजकर घड़ी की चाल को घटाता-बढ़ाता रहता है। यह काम वास्तव में बड़े परिश्रम का है। कभी-कभी कई घंटों तक प्रकाश देना पड़ता है और ज्योतिषी बैठ रहता है। फोटो तैयार हो जाने पर उनको नापनेवाली मशीन में रख दिया जाता है। इसमें इंच के हजारवें हिस्से को बड़ी सुगमता से नाप सकते हैं।

## तारों की दूरी का नाप

देखने में तारे इतने समीप लगते हैं जैसे ठीक हमारे सिर पर हों। परन्तु गणना से उनकी दूरी इतनी अधिक मालूम होती है कि मनुष्य की

कल्पना स्तब्ध रह जाती है। हम नीचे कुछ दो-चार तारों की दूरी बतलाकर अपने अध्ययन को आगे बढ़ायेंगे।

१—ग्रमविज नं० ३४ की दूरी ६ पदुम ९० खरब मील है।

२—ईटा कैसोपिया " १ " ८० " "

३—टासेटी " " ६ " ५ " "

४—अल्फाकन्टारी " " २ " ८० " "

यह कुछ समीप के तारे हैं। दूर के तारों की दूरी तो उनसे कहीं अधिक है। यदि हम सबसे तेज वायुयान\* पर बैठकर सबसे पासवाले तारे पर जाना चाहे तो हमें १ करोड़ वर्ष से अधिक समय लगेगा।

प्रश्न यह उठता है कि इतनी दूर के तारों की ठीक-ठीक दूरी कैसे निश्चित की जा सकती है?

किसी भी वस्तु की दूरी निकालने में हमें आँख ही सबसे अधिक सहायता देती है। इससे हम उस वस्तु के डील-डौल और उसकी स्थिति (Perspective) को जान सकते हैं। वस्तु जितनी ही दूर होती है, उतना ही आँख की नसों पर जोर पड़ता है। मध्यम में ये ही कुछ बातें हैं जिनका प्रयोग हम तारों की दूरी निकालने में भी करते हैं। यह अवश्य है कि तारों की दूरी निकालना इतना सहज काम नहीं है जितना पृथ्वी पर की वस्तुओं की दूरी निकालना। इसके अतिरिक्त इन सभी बातों से तारों की दूरी निकालने में सहायता मिले, सो बात भी नहीं।

तारों में कुछ बहुत चमकीले हैं। हम उन्हें साधारण नगी आँखों से भी देख सकते हैं परन्तु कुछ तारे बहुत ही फीके हैं। वे बड़ी से

---

\*मान लीजिए कि उसकी गति २५० मील प्रतिघंटा है।

बड़ी दूरबीन की सहायता से भी दिखलाई नहा पड़ते। जैसे बड़े-बड़े आकार से हम समझ जाते हैं कि जिस वस्तु को हम देख रहे हैं, वह पास है। वैसे ही हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि जो तारा फ़ीका है वह हमसे बहुत दूर है और जो चमकीला है, वह निश्चय रूप से अधिक निकट है। अतः तारों की दूरी के सम्बन्ध में उनकी चमक पर विश्वास नहीं किया जा सकता। स्थिति की बात तारों के विषय में लागू नहीं होती, यह स्पष्ट है। फोकस में भी अधिक सहायता नहीं मिलती क्योंकि ग्रह और तारे सभी इतनी दूर हैं कि वे सभी एक ही साथ फ़ोकस में आ जाते हैं। यदि चन्द्रमा फ़ोकस में है तो तारा भी फोकस में मिलेगा।

वास्तव में तारों की दूरी नापने के लिए आँख अवश्य अकेली काम नहीं देती। यदि हम एक दूरदर्शक खूब उत्तर की ओर एक और खूब दक्षिण की ओर लगायें तो इन दोनों से वेध करने पर चन्द्रमा की दूरी निकल आयेगी। वास्तव में चन्द्रमा की दूरी इसी तरह निकाली गई है। इस प्रकार हमें एक त्रिभुज के एक भुजा और दो कोणों की नाप मालूम हो जाता है। इसमें शेष नाप मरलता से निकाली जा सकती है।

यहाँ सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि हम अपनी पृथ्वी पर केवल ८,००० मील दूर जा सकते हैं। यदि इतनी दूरी पर से किसी एक तारे को वेध किया जाय तो कोणों के विकला में अधिक अन्तर नहीं आता और यदि नापने में थोड़ी भी भूल हुई तो फिर अनर्थ हो सकता है।

परन्तु यहाँ पृथ्वी की सूर्य के ओर की परिक्रमा हमारी सहायता करती है। सौभाग्यवश इस परिक्रमा का मार्ग वृत्ताकार नहीं, वरन्

दीर्घ वृत्ताकार है। पृथ्वी की इस गति के कारण तारों में भी एक दूसरे के हिसाब से, गति आ जायगी। इस गति को हम 'लम्बन' कहेंगे।

हमारी पृथ्वी प्रत्येक ६ महीने बाद १८ $\frac{1}{2}$  करोड़ मील की दूरी पर चली जाती है। आकाश में उसकी जो स्थिति है, उसमें इसी कारण थोड़ा अन्तर पड़ जाता है। फल यह होता है कि आज जिस स्थान पर हम किसी तारे को देखते हैं, छ महीने बाद वह उस स्थान से कुछ हटा जान पड़ता है। साढ़े अठारह करोड़ मील चलने पर भी यह अन्तर बहुत कम होता है। परन्तु इस तरह हम पृथ्वी से उस तारे की दूरी निकाल सकते हैं।

वास्तव में तारे की दूरी "लम्बन"-द्वारा नापी जाती है। मान लीजिए कि सूर्य में है और पृथ्वी है। दीर्घ वृत्त ख व पृथ्वी का मार्ग है। क से तारा क ता दिशा में दिखलाई पड़ेगा और ख से ख ता दिशा में। स्पष्ट है कि यह तारा दूर के ताराओं के हिसाब से एक दीर्घ वृत्त (ellipse) में चलता हुआ दिखलाई देगा। परन्तु तारे की गति ("लम्बन") कैसे जानी जाय? १७वीं शताब्दी में जेम्स ब्रैडली ने एक तरीका बताया। उसने कहा कि तारे को देखने के लिए दूरबीन को कभी एक ओर कभी दूसरी ओर झुकाना होगा। इसके लगभग बीस वर्ष बाद सर विलियम हर्शेल ने "लम्बन" नापने का एक नया तरीका बतलाया। उसने कहा कि किसी तारे का स्थान ध्रुव या ख-मध्य से नापना कठिन है। हमें उस तारे के पासवाले फ्रीके तारों से सहायता लेनी चाहिए। इस तक पर बढ़ते हुए हर्शेल ने उन तारों की एक सूची बनाई जिनके समीप फ्रीके तारे थे। उसने फ्रीके तारे यह समझकर चुने थे कि वे चमकीले तारों से अधिक दूर होंगे। दो महीनों में उसने २७५ तारों की सूची बना ली और २० वर्ष तक उन पर काम करता गया। परन्तु वह तारों की दूरी न नाप सका।

आज से कोई १०० वर्ष पूर्व तक तारों का "लम्बन" नापा नहीं जा सका था। उस समय इंगलैंड के राज-ज्योतिषी पोण्ड ने कहा था—

"मुझे जान पड़ता है कि हमारे यंत्र जिनसे अधिक स्थूल बने थे, उतने ही अधिक वे ज्योतिषियों को बहका देने थे कि तारों में नापने योग्य लम्बन है। इटली में इस प्रकार बड़े-बड़े ज्योतिषी भ्रम में पड़ गये। डबलिन का यंत्र इनके यंत्र से कहीं अधिक अच्छा है। इसी कारण उसमें इतना लम्बन नहीं दिखलाई पड़ता जितना इटली के ज्योतिषियों ने निकाला था। इस बात पर विश्वास कर मने यह प्रमाणित किया है कि ग्रीनविच का यंत्र और भी अधिक दोषरहित है। उस यंत्र में कुछ भी लम्बन नहीं दिखलाई पड़ता।

इस कथन के १५ वर्ष के भीतर ही (सन १८८८-९९ में) स्ट्रूवे, वेमेल और हेन्डरसन में क्रमशः अभिजित, हेम और अल्फाकटारी के 'लम्बन' नाप लिये। स्ट्रूवे ने माइक्रोमीटर के प्रयोग में अभिजित का लम्बन  $0^{\circ}260 + 0^{\circ}025$  प्रमाणित किया। लम्बन की दूरी का ज्ञान होते ही तारों की दूरी नापने में कोई कठिनाई नहीं होती।

तारों के सम्बन्ध में सबसे अधिक खोज हालैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी कैप्टाइन ने की। उन्होंने आकाश के १८ छोटे-छोटे भाग किये और उन्हें कई एक वेधशालाओं के भुपुर्द कर दिया कि इन भागों में जो तारे हैं उनकी दूरी आदि का पता लगाये।

अब तारों की दूरी नापने के लिए फोटोग्राफी का प्रयोग किया जाता है। लम्बन के नापने में केवल  $0.05$  विकला की त्रुटि सम्भव है। जिस तारे का "लम्बन" नापना हो उसका फोटो एक बार ले लिया जाता है और फिर छः-छ. महीने बाद बार-बार चार-पाँच वर्ष तक फोटो लेते हैं। इनकी तुलना से ठीक-ठीक "लम्बन" का पता चल जाता है।

परन्तु जैसे-जैसे तारों की दूरी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उनके ग्विस्तकने की मात्रा ("लम्बन") कम होती जाती है। पृथ्वी की वार्षिक परिभ्रमा का महारा लेकर भी हम केवल पाँच पद्म मील के घेरे के अन्दर तक के तारों की दूरी का पता लगा सकते हैं। अब तक जो खोज हुई है, उससे पता चला है कि कुछ तीस तारे ऐसे हैं जो एक पद्म मील की दूरी के भीतर-भीतर हैं और पाँच पद्म मील की दूरी के भीतर चार सौ से अधिक तारे नहीं हैं।

आप पूछेंगे कि पाँच पद्म मील की दूरी पर जो तारे बसे हैं, उनकी दूरी का पता कैसे लगता है? प्रश्न उचित है। यह दूरी स्वयम् इतनी अधिक है कि उससे तारे के स्थान में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसकी अपेक्षा अटारह-उन्नीस करोड़ मील की दूरी भी कुछ नहीं है। इसलिए पाँच पद्म मील में अधिक दूर के तारों की दूरी निकालने के लिए ज्योतिषी को दूसरा उपाय करना पड़ता है। उसके पास तारों की ज्योति नापने के लिए यंत्र है। इन यंत्रों के द्वारा वह बड़ी सावधानी से काम करने के बाद थोड़ी-बहुत अटकल लगा लेता है, कि कौन तारा कितनी दूर होगा। इस तरह आज हम असंख्य तारों को श्रेणीबद्ध कर सके हैं और उनमें से कितनी ही की दूरी जान पाये हैं। हमें मालूम हो गया है कि आकाशगंगा में जो तारे दिखलाई पड़ते हैं, वे तारे हमारे सूर्य से कम से कम दस शंख की दूरी पर हैं और हमारे विश्व से बाहर जो तारे फैले हुए हैं, वह इतनी दूर हैं कि उन तक पहुँचने में प्रकाश को पचास हजार वर्ष से कम समय नहीं लगेगा।

तारों की दूरी नापने की एक अन्य रीति भी है। इसमें त्रिपार्श्विक की सहायता ली जाती है। यदि सब तारे इतने ही दूर होते जितना दूर सूर्य है तो भी उनमें कुछ बहुत चमकीले, कुछ बहुत कम चमकीले

और शेष इन्हीं के बीच के रहते। सूर्य की दूरी पर तारे में जो चमक रहेगी उसे हम वास्तविक चमक कहेंगे। हम यह भी जानते हैं कि दूरी आधी होने से प्रकाश चौगुना और दूरी तिहाई होने से प्रकाश नौगुना बढ़ जाता है इत्यादि। रश्मि-विश्लेषण चित्र में यदि एक ही जाति के तारों का वेध किया जाय तो उनमें कई एक काली लकीरें निकल आती हैं। इनमें से यदि दो लकीरें चुन ली जायें तो यह पता चलता है कि उनके घनत्व में विशेष सम्बन्ध है। प्रसिद्ध ज्योतिषी ऐडम्स ने यह पता लगाया है कि तारों की वास्तविक चमक और उसके रश्मि-विश्लेषक चित्र की दो रेखाओं में ऐसा सम्बन्ध है कि वास्तविक प्रकाश का पता इन दो रेखाओं के घनत्व में तुरन्त लग जाता है। ऐडम्स ने इस प्रकार लगभग १,५०० नक्षत्रों की वास्तविक चमक का पता लगाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष चमक मालूम हो जाने पर हिसाब लगाकर दूरी निकाल ली गई। इस रीति में अब तक तीन हजार तारों की दूरी नापी गई है।

जो तारे इतनी दूरी पर हैं कि उनकी दूरी ऊपर की दोनों रीतियों में नहीं निकलती उनकी दूरी का औसत अन्दाजा तो अवश्य ही लगाया जा सकता है। यह उनकी निजी गति के ज्ञान से सम्भव है। यदि निजी गति कम है, तो तारा अधिक दूर है। यदि अधिक है तो तारा निकट है। परन्तु इस रीति में तारों की ठीक-ठीक दूरी नहीं निकाली जा सकती।

ज्योतिष का अध्ययन एक साधारण ऑपेरा ग्लास से आरम्भ करना चाहिए। पहले विद्यार्थी आकाश के महत्त्वपूर्ण और अधिक प्रमुख पिण्डों (तारों) से परिचित हो ले। वह अपना अध्ययन सप्तऋषि से आरम्भ करे। प्रारम्भिक ज्ञान के लिए इन सातों तारों से परिचित

होना आवश्यक है। इनमें दो 'निर्देशक' कहलाते हैं। आकाश के अध्ययन में इनका विशेष महत्त्व है। इनके द्वारा 'ध्रुव' को खोज निकालना सुगम होता है। यही ध्रुव आकाश का सबसे महत्त्वपूर्ण तारा है। सारे तारे इसको केन्द्र बनाकर घूमते हैं।

मघर्षि के सात तारे लगभग एक समकोण बनाते हैं। साधारण रीति पर नगी आँख से देखने से इस समकोण के भीतर दो-तीन तारे दिखलाई पड़ते हैं। अमावस्या की किसी उज्ज्वल रात में देखने से इनकी संख्या बढ़ जायगी। सम्भव है, लगभग एक दर्जन दिखाई दें। अब यदि ऑपेरा शीशे का सहारा लिया जाय तो इसी सीमित क्षेत्र में लगभग १ शत तारे दिखलाई पड़ेंगे। परन्तु इन तारों की संख्या यही समाप्त नहीं हो जाती। दूरदर्शक से देखने से इनकी संख्या सहस्रों पर पहुँच जायगी। इनमें से महस्रों तो अत्यन्त छोटे, फीके, अस्पष्ट बिन्दु-मात्र दीख पड़ेंगे।

इसमें पता चलता है कि आकाश में कितने तारे हैं। वास्तव में जिस भाग में मघर्षि है, उस भाग में तारों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। अन्य भागों में इनकी संख्या कई गुनी अधिक है। अब तक कोई नहीं बता सका है कि सम्पूर्ण आकाश में कितने नक्षत्र हैं। कदाचित् हिन्दुओं की यह कल्पना ठीक हो कि प्रत्येक मनुष्य के लिए एक तारा निश्चित है जो उसके भाग्य का तारा है। अब तब सबसे बड़े दूरदर्शक के सहारे ५,००,००,००० तारे देखे जा सके हैं।

## भारतीय ज्योतिष और वेधशालायें

हमारे देश में वेध की परम्परा बड़ी प्राचीन मालूम होती है। ऋग्वेद में २७ नक्षत्रों, मघर्षि आदि तारों और ग्रहों की परिस्थिति के विषय में

अनेक वर्णन हैं तथा शनिकृत रोहिणी शकट के भेद का उल्लेख है। यजुर्वेद तथा तैत्तिरीय संहिता में यह उल्लेख मिलता है कि रोहिणी पर चन्द्रमा की अतिशय प्रीति है और १८ वर्षों में वह ६ बार उसके अधिक निकट आ जाती है। वाल्मीकिरामायण और महाभारत में ग्रहों और धूमकेतुओं के उदय और अस्त तथा उनके फलाफल का विशद वर्णन है। वाराहमिहिर की बृहत् संहिता की टीका करते हुए घटोत्पल ने लिखा है—

“पैतामह केतु पाँच सौ वर्ष प्रवास में अर्थात् सौरचक्र के बाहर गुप्त अवस्था में रहकर उदय होता है। काश्यप का श्वेतकेतु १,५०० वर्ष प्रवास दशा में रहकर उदय होता है और अपसव्य क्रम से गमन करता हुआ तथा ध्रुव, अभिजित और सप्तर्षिपुंजों को भेदता हुआ अथवा स्पर्श करता हुआ अर्द्ध-प्रदक्षिणाकार पथ से आकाश में घूमता है। इसकी शिखा धूमवर्ण की होती है और उसके उदयकाल में सुभिक्ष होता है। विभावसु रश्मि केतु १०० वर्ष लुप्त रहकर भावर्त नामक केतु के पीछे से कृत्तिका नक्षत्र के पास उदय होता है। इसकी शिखा धूम्राकार होती है।

यहाँ पितामह, उद्दालक, कश्यप आदि धूमकेतुओं के नाम हैं।

इस वर्णन से यह पता चलता है कि प्रारम्भिक भारत में वेधशालायें अवश्य रही होंगी और हमारे पूर्वज ऋषियों ने बड़े परिश्रम से ज्योतिष के क्षेत्र में शोध किया होगा।

परन्तु वर्तमान समय में ज्योतिर्विद्या के जो प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें केवल कुछ ही प्राचीन हैं और उनमें निम्नलिखित वेधयंत्रों का उल्लेख मिलता है—

(१) गोल-यंत्र, (२) कपाल-यंत्र, (३) नाड़ीवल्लय, (४) पलमा-यंत्र, (५) क्षितिज शंकु-यंत्र, (६) सममंडल-यंत्र, (७) सममंडल शंकु, फा० १०

(८) चक्र-यंत्र, (९) चाप-यंत्र, (१०) तुरीय-यंत्र, (११) फलक-यंत्र और (१२) षष्ठी-यंत्र। इन प्राचीन ग्रन्थों में इन वेधयंत्रों के निर्माण का विशद वर्णन है। इन यंत्रों की रचना अत्यन्त जटिल है। हम इनमें केवल एक यंत्र (गोल-यंत्र) का वर्णन करके इस अध्ययन को आगे बढ़ायेंगे।

गोल-यंत्र ज्योतिर्विज्ञान का मुख्य यंत्र है। इसे खगोल का दर्शक अथवा दृष्टान्त समझिए। इस पर अश्विनी आदि २७ नक्षत्र, सप्तर्षि, कालीय, शर्मिष्ठा, लघुऋक्ष, ध्रुव, अभिजित, ब्रह्महृदय, अगस्त्य, त्रिशंकु आदि तारकपुंजों को बड़ी सतर्कता से अंकित किया जाता है। सम्पूर्ण गोलक ३५० अंशों में विभक्त होता है और उस पर विषुवत् वृत्त और उसके समानांतर अनेक अन्य वृत्त बने होते हैं। इस गोल-यंत्र का आधार एक यष्टि होती है। यह यंत्र इस यष्टि पर इस प्रकार स्थापित होता है कि प्रत्येक दिशा में घूम सके। प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि यह यंत्र स्वयम् घूम सके, इसकी भी योजना कर दी गई थी। परन्तु यह विधि गोप्य थी। हाँ, यह अवश्य पता चलता है कि इस गोल-यंत्र के पारे और जल के 'संयोग' से स्वयं वह किया जाता था; कैसे, इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

वर्तमान समय में भारतीय प्राचीन वेधशालाओं का कहीं भी अस्तित्व नहीं मिलता। ज्योतिष-शास्त्र में उज्जैन का नाम अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। कदाचित् वाराहमिहिर का सम्बन्ध उज्जैन के सम्राट् विक्रमादित्य से था। परन्तु उज्जैन में भी तत्तनी पुरानी वेधशाला नहीं है।

मध्ययुग के अन्त में महाराज जयसिंह (सन् १६८६ सन् १७४३) ने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और बनारस में चार वेधशालायें बनवाई थीं। इनके भग्नावशेष अब भी हैं। जयपुर की वेधशाला राजप्रासाद के

भीतर थी और इस कारण उसके यंत्र अब भी अधिक सुरक्षित हैं। उज्जैन की वेधशाला में कोई भी यंत्र अच्छी दशा में शेष नहीं रहा। बनारस के मानमंदिर का तो कदाचित् स्थान्त्रिय पंडितों ने कभी प्रयोग ही नहीं किया, यद्यपि काशी पंचांग बनाने में प्रमुख है। दिल्ली की वेधशाला भी पुरातत्त्व के अनुसंधानों का विषय हो रही है।

जयसिंह ने हिन्दू, मुसलमान और योरपीय ज्योतिष का अच्छा अध्ययन किया था और उनके यंत्रों पर उनका प्रभाव दिखलाई पड़ता है। परन्तु उनका महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने एक बार ज्योतिर्विद्या के पुनरुत्थान की चेष्टा की यद्यपि दुर्भाग्यवश वे सफल नहीं हो पाये। उन्होंने धातु और मिट्टी-चूने तथा पत्थर के इतने बड़े-बड़े यंत्र बनाये कि उनमें त्रुटियों के लिए अधिक स्थान नहीं रहा। यह ध्यान रखना चाहिए कि उस समय तक योरप में भी ज्योतिष-शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ नहीं हुआ था। जयसिंह के यंत्रों में यंत्रराज, सम्राट्-यंत्र, जयप्रकाश, राम-यंत्र, दिग्मांश, नाडीवलय, दक्षिणावृत्ति और षष्ठांश महत्त्वपूर्ण हैं।

हमारे देश में फलित ज्योतिष का विकास भी महत्त्वपूर्ण रहा। फलित ज्योतिष में ग्रहों का स्थान प्रमुख है। वे मानव-जीवन पर अनेक रूप से प्रभाव डालते रहते हैं। 'ग्रहा वै कर्मसूचकाः'। ग्रहों की स्थिति, गति, वक्रता, अतिचार आदि का जाननेवाला व्यक्ति किसी भी मनुष्य के जीवन के सम्बन्ध में भूत, वर्तमान और भविष्य की सभी बातें बता सकता था। परन्तु यह बात मही समाप्त नहीं हो जाती थी। वह व्यक्ति मानसिक और आध्यात्मिक साधना के द्वारा अमांगलिक भावी घटनाओं को रोक भी सकता था। ग्रह-शान्ति की इस प्रणाली का नाम 'अहंग्रह उपासना' रक्खा गया। परन्तु यह विधि सर्वसुगम नहीं थी।

इसलिए जन-साधारणों के लिए एक अन्य व्यवस्था की गई। यदि वह व्यक्ति जिसके ऊपर किसी ग्रह का अनिष्टकारक प्रभाव पड़नेवाला है उस देवता का आश्रय ले और उसकी पूजा-अभ्यर्थना करे, तो उसकी पीड़ा का नाश हो जायगा अथवा उसे वह अनिष्ट अधिक हानि नहीं करेगा। ग्रह-शान्ति की इस जन-सुगम प्रणाली का नाम प्रतीकोपासना है।

इसके आगे बढ़कर ग्रहों को अध्यात्म-जगत् में स्थान दिया गया। अथर्ववेद में जहाँ अन्य देवताओं की पूजा है वहाँ ग्रह-शान्ति का वर्णन भी है।\* प्रत्येक लौकिक और आध्यात्मिक कर्म के साथ नवग्रह की पूजा जोड़ी गई। प्रत्येक ग्रह का 'ध्यान' उपस्थित किया गया। सबके अलग-अलग लोक हैं, अलग-अलग वाहन हैं। उनकी शक्ति और क्रियाओं में भी भेद है। ग्रहों के भिन्न-भिन्न रूप बतलाये गये—

(१) मंगल—यह भरद्वाज गोत्र के क्षत्रिय है। इनका रंग अग्नि के समान है। वाहन मेष है। रक्त वस्त्र और माला धारण करते हैं। शक्ति, वर, अभय और गदा से सम्पन्न है।

(२) बुध—अत्रि गोत्र है। वर्ण पीला है। चार हाथों में ढाल, गदा, वर और खड्ग है। पीले वस्त्र धारण करते और सिंह पर आरूढ़ होते हैं।

(३) बृहस्पति—अङ्गिरा गोत्र के ब्राह्मण है। वर्ण पीत। पीताम्बर पहनते हैं। इनका आसन कमल है, जिस पर ये रुद्राक्ष, वरमुद्रा, शिला और दंड धारण करके बैठते हैं।

(४) शुक्र—भृगु गोत्र के ब्राह्मण है। इनका भी आसन कमल है।

---

\* १ शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसा शमादित्याश्च राहणा । इत्यादि

वर्ण श्वेत है। हाथों में वही वस्तुएँ धारण किये हैं जो बृहस्पति धारण कर रहे हैं। इनके वस्त्र भी श्वेत हैं।

(५) शनि—कश्यप गोत्र के शूद्र हैं। वर्ण कृष्ण। काले वस्त्र धारण करते हैं। चार हाथों में वाण, वर, शूल और धनुष लिये हैं। इनका वाहन गीध है।

हम पहले बता आये हैं कि इन पाँच आधुनिक ग्रहों के अनिश्चित प्राचीन भारत के मनीषी सूर्य, चन्द्रमा, राहु और केतु (चन्द्रमा की ही दो अवस्थाएँ) को भी ग्रह मानते हैं। इन सबके लिए उन्होंने वाहन, वर्ण और वस्त्रों के वर्णों की व्यवस्था की है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि ये चार ग्रह नहीं हैं। सूर्य-नक्षत्र है। चन्द्रमा उपग्रह है। राहु और श्वेत चन्द्रमा के ही श्वेत और कृष्ण पाट हैं। परन्तु अभी इसका फलित ज्योतिष पर कुछ भी प्रभाव पड़ता नहीं दिखलाई पड़ता।

जाप के लिए प्रत्येक ग्रह का एक मंत्र भी कहा गया। मंगल का मंत्र, ओम् हूँ श्री मङ्गलाय नमः है; बुध का, ॐ ऐ श्री श्रीबुधाय नमः; बृहस्पति का, ॐ ऐ वली बृहस्पतये नमः; शुक्र का, ॐ ह्री श्री शुक्राय नमः और शनि का, ॐ ऐ ह्री श्री शनैश्चराय नमः। जाप के साथ पूजा और हवन का भी विधान है। जिस ग्रह का जो वर्ण होता है, उसी रंग की वस्तुएँ पूजा में लगाई जाती हैं। इन नवग्रह की दोष-शान्ति के लिए साधारण उपचार के रूप में विशेष-विशेष रत्न धारण करने का नियम कहा गया। मङ्गल के लिए प्रवाल (मूँगा), बुध के लिए मरकत, बृहस्पति के लिए पुष्पराग, शुक्र के लिए हीरा और शनि के लिए नीलकान्ति मणि। यही नहीं, 'सुश्रुत' में नव बालग्रह की एक दूसरी अनोखी कल्पना मूर्तें कर ली गई।

## आकाश की सैर

ज्ञानशंकर ने यंत्र का चक्र घुमाते हुए कहा—“तुम इसे आश्चर्य कह सकते हो, परन्तु अभी थोड़ी देर में तुम जो देखोगे, उस पर तुम्हें हठात् विश्वास करना होगा। अभी कुछ मिनटों के पश्चात् हम एक बड़ी यात्रा के लिए निकल खड़े होंगे। जानते हो, यह यात्रा कितनी बड़ी होगी।”

मैं चुपचाप उसके विचित्र यंत्र को देख रहा था। वह मेरी समझ में आ रहा हो, यह बात नहीं। वास्तव में उसकी बनावट इतनी विचित्र थी कि वह मन को अपनी ओर खींच लेती थी।

अपनी बात को अनसुनी समझना ज्ञानशंकर को कभी अच्छा नहीं लगता था, इस बात को मैं जानता था। परन्तु अभी मैं उसके विचित्र यंत्र में ही उलझा हुआ था।

उसने फिर कहा—“देखो, हम अब आकाश की सैर करेंगे। परन्तु वास्तव में आकाश क्या है? यह इसी सृष्टि का तो दूसरा नाम है जिसका विस्तार अनन्त है। यह तो तुम जानते ही हो कि पुरानी खोजों ने उसे पृथ्वी की तरह गोल सिद्ध कर दिया है। तुमने आईसाइन का नाम सुना है।”

“हाँ,” मैंने संक्षेप में कहा।

“पुरानी बात है”, उसने कहा—“परन्तु हम अब भी उसका आधार लेकर कह सकते हैं कि हमें एक ऐसे वृत्त की यात्रा करनी होगी जिसका व्यासार्ध पृथ्वी और सूर्य के अन्तर से ६०,००,००,००,००० गुना है। यह १,००,००,००० प्रकाशवर्ष हुआ। इससे दुगना विश्व का विस्तार है और फिर उसकी परिधि।”

“डा० सिल्वास्टीन...” मैंने कहा।

बात काटकर उसने कहा—“हाँ...यह भी पुरानी खोज है। क्या तुम्हे आश्चर्य नहीं होता, हम उन पुराने ज्योतिषियों से कितना आगे बढ़ आये हैं। केवल कुछ ही बातें ऐसी हैं, जो अब सच रह गई हैं। इस डाक्टर की यह बात भी ऐसी ही है।”

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखकर कहा—“परन्तु क्या पृथ्वी का आकर्षण हमें ऊपर उठने देगा...”।”

उसने कहा—“क्यों नहीं। पतंगे, गुब्बारे और वायुयान किस प्रकार पृथ्वी के आकर्षण से मुक्त हो जाते हैं। वायुयान ४-५ मील ऊँचा उठ लेता है। पतंग इससे भी ऊँची जाती है। गुब्बारे में बैठकर मनुष्य ७ मील तक हो आया है। यह और अधिक पुरानी बात है। १८६६ की घटना है। गुब्बारे में केवल दो साहसी मनुष्य थे ग्लेशर और काक्सवेल। सात मील पहुँचकर ठंड इतनी अधिक हो गई कि ग्लेशर मूर्च्छित हो गया। काक्सवेल के अंग भी ठिठुर गये परन्तु उसने साहस करके हिलने-डुलने का प्रयास किया और गुब्बारे का वाल्व अपने दाँतों से खोला जिससे कुछ गैस निकल गई और गुब्बारा नीचे उतर सका। परन्तु अकेला गुब्बारा तो २२-२३ मील ऊँचा पहुँच जाता है। प्रयोगों के लिए वैज्ञानिकों ने अनेक बार ऐसे गुब्बारे छोड़े हैं। ये सब पृथ्वी के आकर्षण से मुक्त होकर ही ऊपर उठे होंगे।”

मैंने पूछा—“मुझे तुम्हारा यंत्र जूलिस वर्न के उस प्रसिद्ध उपन्यास की याद दिलाता है जिसमें उसने चन्द्रमा तक यात्रा की थी। क्या उसी की तरह इसमें हम तोप के गोले की तरह दागे जायेंगे?” मैं व्यंग्य से मुसकराया।

“नहीं, मुझे वर्न का ढंग पसन्द नहीं। उसमें धक्का बेतरह लगता

था। Projectile को प्रारम्भिक गति देने के लिए जितनी शक्ति की आवश्यकता थी, उतनी शक्ति मेरे इस यान को नहीं चाहिए। तुमने वेल्स (H. G. Wells) की पुस्तकें पढ़ी होंगी। मेरी समझ में वेल्स का ढंग वर्न के ढंग से कहीं अच्छा था। उसमें उसने एक तत्त्व केवोराइट (Cevorite) की कल्पना की थी जिस पर पिंडों के आकर्षण का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता था। उसके यान पर उसी तत्त्व की चादर ढकी थी। उसका यंत्र भी अधिक अच्छा था। उसका रूप गोले की तरह था।”

मैंने कहा—“और होवर्थ . . .।”

“हाँ, राकेट . . .” वह मुसकराया—“वह तो केवल महायुद्ध के मनीषियों के मृस्तिष्क में ही रहा। उस विचार को आगे तो किसी ने बढ़ाया ही नहीं . . . . .।”

क्षण भर मैं चुप रहा। फिर मैंने कहा—“जी तो चाहता है कि इस यात्रा में मैं भी तुम्हारा साथ दूँ, परन्तु यदि कहीं तो अपने मन का ढंग भी बतला दूँ।”

“बताओ।”

मुझे “मार्कट्वेन के ट्रेम्स अब्राड” (आवारे) की कहानी याद आ रही है। मार्कट्वेन माउन्ट ब्लॉक पर चढ़ना चाहता था। उसी समय पर्वतारोहियों का एक दल Chamomix स्थान के सामने की ढाल से पर्वत पर चढ़ रहा था। ट्वेन उसी के साथ हो लिया। परन्तु कैसे? उसने एक आदमी के हाथ से दूरदर्शक ले लिया और उसका मुँह उस दल की ओर कर दिया। फिर जैसे-जैसे वह दल ऊपर चढ़ता जाता महाशय मार्कट्वेन प्रसन्न होते जाते और अपने साथियों को साबाशी देते जैसे आप भी उसी दल में हों। जब दल चोटी पर पहुँच गया

तो इन महाशय ने प्रसन्नता की वह किलकारी दी कि लोग काम-काज छोड़कर इन्हे सम्हालने दौड़े।”

ज्ञानशंकर ने अट्टहाम किया। मैं भी उममे सम्मिलित हो गया। उसने हँसते-हँसते कहा—“वाह भाई, ढंग तो अच्छा रहा, परन्तु इस यंत्र में मैं अपने साथ तुम्हे भी बलि का बकरा बनाना चाहता हूँ।”

मैंने मुँह बनाकर कहा—“इस बात से मुझे कोई प्रसन्नता नहीं। मेरा यंत्र दूरदर्शक है। जहाँ तुम महीनो, वर्षों से पहुँचोगे वहाँ पहुँचने से मुझे शून्य से भी कम समय लगता है। तुम्हारी तरह मेरे मिर में प्राण देने का पागलपन नहीं है।”

तभी ज्ञानशंकर ने अट्टहाम किया और उमका यंत्र भयानक शब्द करने लगा। उसने मुमकराते हुए मेरे मुँह की ओर देखा और मुझे सामने के एक विचित्र यंत्र की ओर संकेत किया।

क्षण भर देखकर मैंने कहा—“जान पड़ता है, हम घूम रहे हैं। क्या यह हमारा यान लट्टू की तरह चक्कर खा रहा है?”

“हाँ”, उसने एक विचित्र चक्र पर हाथ डालते हुए कहा—“यह यंत्र कई गोलों के परतों का बना हुआ है जो परस्पर विपरीत गति में घूम रहे हैं। जब इसकी गति अधिक तीव्र हो जायगी तो इस यंत्र पर पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव नष्ट हो जायगा और हमारा यंत्र ऊपर उठने लगेगा।”

सामनेवाले दर्पण में हमारा प्रतिबिम्ब विचित्र तीव्रता से घूम रहा था यद्यपि हम उसी तरह एक स्थान पर बैठा रहना अनुभव कर रहे थे। ज्ञानशंकर ने मेरे कान में झुककर कहा—“हम ऊपर उठ रहे हैं। तुम बगल के यंत्र में देख सकते हो।”

हम तीव्र गति से ऊपर उठ रहे थे। असंख्य लोगों की भीड़ जो इस यात्रा में हमारा अभिनन्दन करने आई थी, उसकी करतल-ध्वनि,—कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था, न धक्का ही लगा। हम एकदम तैरकर इतने ऊपर उठ गये कि गौरीशंकर की ऊँची चोटी हमारे पैरों के नीचे दिखलाई पड़ती थी।

मैंने ज्ञानशंकर से पूछा—“क्या हम चल रहे हैं?”

“वह तो बगल के यंत्र में देख लो। परन्तु हम इसे चलना या उड़ना कुछ भी नहीं कह सकते। यह सब शब्दावली पृथ्वी की है जहाँ प्रत्येक हिलने-डुलने में पृथ्वी के आकर्षण का हाथ रहता है। सच तो यह है कि हम इस यंत्र की गति को किन्हीं भी सीधी अथवा वक्र रेखाओं-द्वारा चित्रित नहीं कर सकते। हम चल भी रहे हैं, नहीं भी चल रहे हैं।”

परन्तु उधर बगल का यंत्र बतला रहा था कि हम अत्यन्त आश्चर्य-जनक गति से ऊपर उठे जा रहे हैं।

सहसा ज्ञानशंकर ने कहा—“वह देखो, हम पृथ्वी को छोड़ आये। क्षण भर में हम उसकी आकर्षण-परिधि से निकल जायेंगे। तब हम प्रकाश की गति से चल सकेंगे।”

“तब तो कुछ भी देखना-भालना कठिन होगा।”

ज्ञानशंकर ने कहा—“यात्रा लम्बी है। बाद को हमें यान की गति प्रकाश की गति से भी सैकड़ों गुना अधिक करनी होगी। कम करना ठीक नहीं होगा। परन्तु फिर भी अभी मैं गति को कुछ कम कर दूँगा।.... हाँ, जिस यंत्र में तुम देख रहे हो, उसकी चाल को घटा देना। फिर जो तुम देखना चाहोगे, वह देर तक देख सकोगे। तो, हम चन्द्रमा तक पहुँच गये।”

चन्द्रमा तक । पृथ्वी से २,४०,००० मील दूर।

“क्या तुमने दर्पण की चाल धीमी कर दी ?”

“हाँ ।”

“देखो, हम चन्द्रमा को छोड़ गये। परन्तु तुम्हारे दर्पण में वह दिखलाई पड़ रहा है...।”

मुझे कवियों की पंक्तियाँ याद आई। सचमुच कवि भूठे हैं, विज्ञान ही सत्य है। कहाँ सुन्दरियों के मुख का उपमान, कहाँ ऊँचे पहाड़ोवाला सामने का चन्द्रमा।

चन्द्रमा टोस, कठोर, विशाल श्मशान की तरह हमारे सामने था। मैं ज्ञानशंकर से कुछ पूछना ही चाहता था कि वहाँ जीवधारी प्राणी हैं कि नहीं, परन्तु सहसा मुझे इस प्रश्न का उत्तर मिल गया। मुझे अनेक विचित्र प्रकार के जीव-जन्तु चन्द्रमा के धरातल पर रेंगते हुए दिखलाई दिये। सचमुच वे विचित्र प्रकार के थे। उनमें कुछ बिलों के भीतर घुस रहे थे और हमें देखकर रुक गये थे, कुछ के उत्सुक मुख हमारी ओर उठे हुए थे। मेरे मुँह से आश्चर्य की चीख निकल गई।

ज्ञानशंकर मेरे विस्मय का अर्थ समझ गया। उसने मेरी ओर मुसकराते हुए कहा—“वेल्स ने ठीक सोचा था। चन्द्रमा पर इस समय इसी तरह के जीवधारी निवास करते हैं जैसे तुम सामने के दर्पण में देख रहे हो। तुम्हें आश्चर्य है कि ये हमारी तरह नहीं हैं। हाँ, परन्तु पृथ्वी पर भी ऐसे अनेक प्राणी हैं जो हमारे-जैसे नहीं हैं। हमें आकाश के इन सब पिंडों में अपने ही भाँति के मनुष्य देखने के लिए उत्सुक न रहना चाहिए। पहले यहाँ कुछ-कुछ हमारे-जैसे प्राणी भी रहते थे परन्तु अब वह समय अधिक दूर चला गया। तुम जानते हो चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी के आकर्षण से बहुत कम है। इससे उसके ऊपर का वातावरण बहुत समय हुआ, लगभग उसे छोड़ गया। अब जो थोड़ी-सी हवा है, उसमें इसी प्रकार के प्राणी रह सकते हैं।”

“क्या यहाँ हवा है?”

“है। परन्तु उस रूप में नहीं जिससे तुम साधारणतया परिचित हो। चन्द्रमा के जो भाग सूर्य के विपरीत हैं, वहाँ तो वह बर्फ के गोलों की तरह जम गई है। हाँ, जो भाग सूर्य के सामने हैं, वहाँ वह गैस के रूप में है, परन्तु उसका घनत्व बहुत कम है।”

इसी समय चन्द्रमा के धरानल से कुछ धुआँ उठना हुआ दिखलाई पड़ा। मैंने इस पर आश्चर्य प्रकट किया। ज्ञानशंकर उस समय एक विचित्र प्रकार की तोप को घुमा रहा था। उसने कहा—“मैं पहले भूल गया था कि हमने पृथ्वी के अपने साथियों से वादा कर लिया था कि हम चन्द्रमा पर पहुँचकर उनको सकेत करेंगे।”

“हाँ, मैंने ‘दिग्दर्शन’ में पढ़ा था। क्या तुमने इसी लिए गोला दागा था।”

“हाँ, यही सकेत निश्चित था।”

“तब तो वे समझ गये होंगे। वे बड़े प्रसन्न हुए होंगे।”

ज्ञानशंकर के मुख पर कुछ गभीरता छा गई। उसने कहा—“शोक, मैं कोई ऐसा आविष्कार नहीं कर सका जिसके द्वारा इस महाशून्य के भागों में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता। यदि ऐसा सम्भव हो गया होता तो हम इस यान पर बैठे-बैठे अपने सम्बन्धियों से बातें कर सकते।”

मैं इस समय अपने इतिहास के पाठ को मन ही मन दुहरा रहा था। एक समय ऐसा था कि मनुष्य आकाश की सैर की कल्पना करते थे। दो सहस्र वर्ष पहले योरप के लेखक लूसियन ने Icaromenippus की कल्पना की थी। इस व्यक्ति ने आकाश की सैर करने का जो ढंग निकाला था उसे सोचकर मुझे हँसी आ रही थी। उसने एक

बड़े उकाब को पकड़ा और एक बड़े गिद्ध को। पहले उसने उकाब का दाहिना पंख काट लिया, फिर गिद्ध का बायाँ पंख। इन्हें उसने एक फीते से अपने कन्धे में बाँध लिया। पंखों के सिरों पर उसने बड़े-बड़े काँटे लगाये जिन्हें वह हाथ में भर सकता था। फिर उसने पृथ्वी पर धीरे-धीरे उड़ना सीखा। अन्त में एक दिन वह चन्द्रमा पर पहुँच गया। यहाँ तक पहुँचकर मैं अपने मन में मुसकराया। सचमुच हम इस व्यक्ति से अधिक सौभाग्यशाली हैं। हम चन्द्रमा को छोड़कर बहुत आगे बढ़ आये। हमें गिद्ध भी नहीं बनना पड़ा था।

हमारे चारों ओर अनन्त अन्धकार था। आँखें उसे भेद नहीं सकती थी। मैंने सोचा, यहाँ हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों का कुछ भी सहारा नहीं ले सकते। यदि हमारे-जैसे कोई अन्य यात्री इस सृष्टि की यात्रा करते हों और हमारे पास से निकल जायँ, तो वे फिर चाहे तोपे छोड़े, हम उनका पता नहीं लगा सकते। परन्तु क्या अन्य यात्रियों का मिलना सम्भव है, मैं इस कल्पना पर मुसकराया।

जहाँ हम यात्रा कर रहे थे, वहाँ का रंग कोलतार से अधिक काला था। इस अन्धकार-पट पर चारों ओर बराबर तारे छिटकें थे। हम ऐसे देश में पहुँच गये थे जहाँ न दिन था, न रात। यहाँ आकाश भी नहीं था, क्योंकि जिस आकाश से हम परिचित हैं, वह नीला है। परन्तु यहाँ नीलिमा का नाम भी नहीं। नीलिमा का सम्बन्ध केवल वायुमंडल से है। यहाँ वायुमंडल कहाँ। करोड़ों मील तक धूल और जल अथवा गैस का एक भी कण नहीं। फिर आकाश की परिचित नीलिमा दिखलाई नहीं पड़े तो आश्चर्य ही क्या?

दूर से एक फुलझड़ी हमारी ओर आती दिखलाई दी। सारा काला आकाश प्रकाश-विन्दुओं से भर गया।

ज्ञानशंकर बड़ा व्यस्त जान पड़ता था। मुझे उसकी चिन्ता पर आश्चर्य हुआ। परन्तु यह क्या? सहसा उसने क्या किया? हमारा यान एकदम इस प्रकार किसी ओर झिरने लगा जैसे कबूतर पंख बन्द करके ढेले की तरह गिर पड़े। मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। दर्पण में फुलभङ्गी धीरे-धीरे अदृश्य हो रही थी?

“उल्काचक्र।” उसने कहा—“यदि हम क्षण भर विलम्ब करते तो हमारा यान इनसे टकरा जाता।”

“मुझे कैपकैपी आगई। करोड़ों-अरबों मील ऊँचे या नीचे से कहीं किसी ओर गिरने की कल्पना कीजिए। यहाँ जीवन का तो प्रश्न ही नहीं। वह तो यान के चकनाचूर होते ही समाप्त हो जाता। परन्तु फिर न जाने किस बात के लिए इतना भय!”

“हम कहाँ गिरते?”

ज्ञानशंकर अब अधिक चैतन्य था। उसने चक्र को एक ओर घुमाते हुए कहा—“अरे, यह बात जानने के लिए हम जीते नहीं बचते! फिर कोई इसकी चिन्ता ही क्यों करेगा!”

मैं चुप था।

क्षण भर ठहरकर उसने कहा—“कदाचित् हम इस सृष्टि के केन्द्र में पहुँच जाते। हम अभी उसके ऊपर-ऊपर धरातल पर चल रहे हैं। केन्द्र में पहुँचने का यही एक ढंग है।”

उसने हँसते हुए कहा—“कहो तो यान को गिरने दिया जाय।”

मैंने चिल्लाकर उत्तर दिया—“यही कौन कम पागलपन है। फिर हम शायद लौट भी नहीं सकें!”

“यही बात! हम सृष्टि के केन्द्र में सदा के लिए प्रतिष्ठित हो जायेंगे, यही क्या कम है।”

मैंने व्यंग्य से कहा—“परन्तु यह बात तुम्हारे उस छोटे-से संसार के समाचार-पत्रों में नहीं छपेगी और तुम्हें अभिनन्दन-पत्र नहीं मिल सकेंगे।”

“ओह हो ! तो तुम समझते हो, यह सब प्रासाद के लिए किया जा रहा है !” उसने अट्टहास किया। “सौ-पचास वर्ष के जीवन के लिए ! और वह भी एक क्षुद्र प्राणी का !”

मैं हतप्रभ हो गया।

“हम मंगल ग्रह की ओर बढ़ रहे हैं। यद्यपि हम अभी मंगल पर पहुँचे नहीं हैं, परन्तु बहुत पास हैं।”

“दर्पण में कुछ दिखलाई नहीं देता।”

ज्ञानशंकर ने दर्पण को एक विशेष दिशा में मोड़ दिया। अब उसमें मंगल दिखलाई पड़ने लगा था।

उसने कहा—“हम इस ग्रह को नगी आँख से देख रहे हैं, दूरदर्शक से नहीं। दूरदर्शक में यह उलटा दिखलाई पड़ता है। इसी से अब हमें थोड़ा अन्तर दिखलाई पड़ता है। देखो उत्तर-ध्रुव बर्फ से नहीं जमा है। दक्षिण-ध्रुव बर्फ से जमा है। गर्मियों में यह बर्फ पिघलने लगती है।

मुझे मंगल के सम्बन्ध में पृथ्वी के वैज्ञानिकों के मत स्मरण आ रहे थे। क्या वहाँ मनुष्य है या अधिक बुद्धिमान् प्राणी है ? क्या ये मंगल की नहरें हैं ? ये नहरें तो नहीं जान पड़ती !

ज्ञानशंकर के लिए मेरे मन की अवस्था समझ लेना कठिन नहीं था। उसने कहा—“तुम जो सोच रहे हो, वह मैं समझता हूँ। वही मनुष्यों की बात ! जैसे हम ही सारी सृष्टि में सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणी हैं और यह सारा सृष्टि-चक्र हमारे लिए ही रचा गया हो। परन्तु यह हमारा भ्रम है। यह सृष्टि-चक्र और उसका विधाता हमारे लिए उतनी ही

चिन्ता करता है जितनी किसी मधुमक्खी के जीवन-मरण और पालन-पोषण के लिए।”

अब मंगल अधिक प्रास आगया है। हम उसे पूरा-पूरा देख भी नहीं सकते थे। ध्रुव हमारे सामने से ओझल हो गये थे।

“हाँ, तो तुम मनुष्य की बात जानना चाहते थे। देखो यहाँ कोई भी मनुष्य दिखलाई नहीं पड़ता। कदाचित् कोई जीव भी नहीं है। जिन्हें हम नहरे समझते थे वे बड़े-बड़े काले गड्ढे हैं जो धरातल के जमने और कठोर पड़ने के समय पड़ गये थे। ध्रुवों की बर्फ पिघल-रुइ इन गड्ढों में भर जाती है। इससे अधिक कोई क्रियाकलाप यहाँ नहीं होता जान पड़ता।”

मैंने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा—“तब रसल वेल्लेस (Russel Wallace, Alfred) की बात ही ठीक मालूम होती है।”

“क्या ?”

“यही कि इस सृष्टि में कहीं भी जीवन नहीं है।”

ज्ञानशकर ने अद्रह्म किया।

“हमें चिन्ता क्यों हो कि जीवन है या नहीं। कौन कह सकता है इन सहस्रों सूर्यों की परिक्रमा करते हुए असंख्यो पिंडों में से दो-दस अथवा हजार में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं हुई हो जिनमें जीवन का विकास होता है।”

“परन्तु पृथ्वी पर तो हम समझते थे कि मंगल में ज्ञानवान् मनुष्य होंगे जिन्होंने नहरे बनाई होगी !”

“यदि हम मंगल से पृथ्वी को वेध करे तो क्या हम यह निश्चयरूप से कह सकते हैं कि लंका भारतवर्ष से अलग है या यही कि काठियावाड़ प्रायद्वीप है। यही बात हमारे उस भ्रम के सम्बन्ध में भी लागू है।”

मंगल दृष्टि-पथ से निकल चुका। ज्ञानशंकर ने मुझे बतलाया कि उसने यान की गति सहस्रों प्रकाशवर्ष कर दी थी अब हम शीघ्र ही सौर्य-मंडल से निकल जायेंगे।

“हाँ”, ज्ञानशंकर ने कहा---“यह सृष्टि एक बड़ी तिलिस्म है। यह आश्चर्य से भरी पड़ी है। जब हम सौर्य-चक्र को पीछे छोड़कर नीहारिकाओं में प्रवेश करेंगे तो हमें इतने अधिक आश्चर्य दिखलाई पड़ेंगे, कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते। परन्तु आकाश इन नीहारिकाओं पर ही समाप्त नहीं है। हम और भी आगे जायेंगे। तब इन आश्चर्यों की संख्या कही अधिक बढ़ जायगी। देखो एक दृष्टान्त देता हूँ। यह सृष्टि तो नारंगी की तरह है ही। अतएव किसी भी ग्रह-तारे का प्रकाश इसका चक्कर प्रत्येक दिशा में करता है। कही न कही कोई स्थान ऐसा आ जाता है, जहाँ इस प्रकाश की किरणें परस्पर काटती हुई चली जाती हैं। इस स्थान पर उस पिंड का प्रतिबिम्ब बन जाता है। बहुधा यह बहुत ही धुंधला होता है और हमें दिखलाई नहीं पड़ता परन्तु सब तारे तो इतने धुंधले चित्र नहीं बनाते। कही-कही यह प्रतिबिम्ब इतना चमकीला होता है कि सत्य का धोका होने लगता है। सम्भव है हम कितने ही पिंडों को यह समझकर छोड़ जायें कि हम इनसे टकरा न जायें। परन्तु वे वास्तव में पिंडों की छाया मात्र हों और उनसे टकराना सम्भव ही नहीं हो।”

“क्या हमें अपने सूर्य का भी इस प्रकार का प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ेगा? क्या यह सम्भव है?”

“अवश्य !”

“परन्तु क्या हमारे मार्ग में कोई बाधा नहीं है? क्या हम इसी तरह बढ़ते चले जा सकते हैं?”

ज्ञानशंकर ने कहा---“दीपंकर जब बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए तिब्बत गये थे तो कितने वर्ष के थे, जानते हो? उनकी आयु अस्सी वर्ष पार कर चुकी थी। क्या वे जान सकते थे कि वे अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकेंगे? ज्ञान का जिज्ञासु जीवन-मरण के प्रश्न को सामने नहीं लाता। हो सकता है, हम इस यात्रा में समाप्त हो जायें। हो सकता है हम किसी पथभ्रष्ट पिंड से टकरा जायें। सब प्रकार की सम्भावनायें हैं परन्तु उनका भय करके हम इस यात्रा के आनन्द और गौरव को घटा तो नहीं सकते!”

मैं चुपचाप दर्पण देखने लगा। वहाँ कोई नया पिंड उदय हो रहा था। इस यात्रा के आनन्द और गौरव में भाग लेने के लिए मुझे भी किसी पिंड से टकराकर प्राण देना पड़े, यह मेरे लिए चिन्ता और शोक की बात थी।

“बृहस्पति !”

“हाँ।”

“यह लाल धब्बे... हाँ, यह ग्रह अभी पूरी तरह ठोस नहीं हुआ है। इसका प्रत्येक भाग अपनी कक्षा पर घूमता है परन्तु पूरा पिंड भी घूमता है अतः इस गति से स्थान का अन्तर नहीं पड़ता।”

हमारे सामने इतना बड़ा प्रसार था जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। सचमुच, बृहस्पति वृहद् है, मैंने सोचा। इसके सामने हमारी पृथ्वी कितनी वामन लगेगी !

“बृहस्पति का वलय क्या हुआ?” मैंने ज्ञानशंकर के ऊपर झुककर उससे पूछा।

“बृहस्पति का वलय।” उसने कहा “तुम उसे नहीं देख सकते। यह बड़े धूल के जैसे छोटे कणों का बना हुआ है जो इस ग्रह की परि-

क्रमा करते हैं परन्तु इनका छोटा आकार हमारा सहायता नहीं करता। पृथ्वी से यह वलय इसलिए दिखलाई पड़ता है कि हम बृहस्पति को प्रकाशमान देखते हैं। यहाँ हमें कोई प्रकाश नहीं मिलता। समझे ! वलय के कण प्रकाश को विच्छरित करते हैं, इससे चमककर दिखलाई पड़ने लगते हैं। लो, अब हम वलय में घुस गये।”

मैंने दर्पण में देखा ! उसमें सहस्रो छोटे-छोटे कण हमें घेरकर उड़ रहे थे।

“क्या हम इससे टकरायेगे नहीं।”

“इनका घनत्व बहुत कम है। गति भी बहुत कम। हमें कोई हानि नहीं होगी !”

“परन्तु क्या हम ग्रह पर उतर रहे हैं।”

“नहीं, मैं उसके आकर्षण को बचाकर निकल जाऊँगा। यद्यपि अब भी हम इस ग्रह की आकर्षण-परिधि में हैं परन्तु अभी आकर्षण कम है।”

दर्पण में रेत के कण उड़ना बन्द हो गये। कदाचित् हम वलय को छोड़ गये थे। थोड़ी देर बाद हम फिर अन्धकारपूर्ण आकाश में पहुँच गये। यहाँ से शनि दिखलाई पड़ता था। ज्ञानशंकर ने कहा—“यह अभी सैकड़ों प्रकाशवर्ष दूर है। परन्तु तुम इसे यहाँ से देख सकते हो। मैं इस ग्रह के पास पहुँचकर चक्र को रोक दूँगा और हमारा यान भी शनि के उपग्रहों की भाँति उसकी प्रदक्षिणा करने लगेगा।”

परन्तु उससे पहले ही एक ऐसा आश्चर्य घटित हो गया जिसकी सम्भावना ज्ञानशंकर को भी नहीं थी।

हम सहसा एक विचित्र दिशा में विचित्र गति से बढ़ने लगे। दर्पण में कुछ भी नवीन बात दिखलाई नहीं पड़ रही थी। ज्ञानशंकर ने चक्रों

को इधर-उधर घुमाया परन्तु जिस दिशा में वह यान को चलाना चाहता था, उस दिशा में यान नहीं जा सका।

“क्या बात है ?” उसने चिन्ता से कहा, और वह एक बार फिर यंत्रों पर झुक गया।

थोड़ी देर के बाद उसने सिर उठाया। कुछ सोचकर और सामने के आकाश के मानचित्र पर दृष्टि डालकर उसने कहा—“हाँ, केतु है। यह हेलीकेतु है। हम इसकी पूँछ में आगये हैं।”

“तब !”

“कोई भय नहीं !” यह पूँछ हमारे पथ को थोड़ा-सा टेढ़ा कर सकती है। इससे अधिक हानि की सम्भावना नहीं !”

उसने दर्पण को चक्कर दिया। हेलीकेतु सामने आगया।

“पूँछ !”

“हाँ, यह करोड़ों मील लम्बी है। केतु की नाभि से एक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ निकल रहा है जो सूर्य के प्रकाश के दबाव के कारण पूँछ के रूप में उसकी विपरीत दिशा में मुड़ जाता है। अगले वर्ष पृथ्वी-वाले इस केतु को देख सकेंगे।”

“सच !” मैंने आश्चर्य से कहा—“तब हम इसे एक वर्ष पहले देख रहे हैं।”

“हाँ,” उसने कहा—“१९८४ है। यह केतु पृथ्वी पर प्रत्येक ७५ वर्ष बाद दिखलाई पड़ता है। १९१९ में दिखलाई पड़ा था !”

किसी ने हमारे यान को हिला-डुला दिया। फिर वह अपनी निश्चित गति से चलने लगा।

ज्ञानशंकर ने कहा—“हम हेलीकेतु की पूँछ से निकल गये। यह भी

एक घटना है। यदि किसी केतु की नाभि से टकरा जायँ, तो फिर मरण निश्चय है।”

मैंने कहा—“इस मौत के भूत को साथ लेकर यात्रा करना कठिन है। तुमने पहले इसका उपचार ढूँढ़ लिया होता।”

ज्ञानशंकर ने मुसकराकर कहा—“हो सकता है, कभी कोई ढूँढ़ ले। परन्तु फिर भी पिंड से टकराकर प्राण तो देने ही पड़ेंगे, हाँ, प्राकृतिक मृत्यु का उपचार हो सकता है!”

थोड़ी देर में हमारा यान शनि का चक्कर लगा रहा था। जो शनि हमें उस नर्तकी-जैसा लग रहा था जिसके वस्त्र तीव्र गति से चक्करं लेने के कारण उड़ रहे हो, वह हमारे सामने था।

शुक्र का जो भाग हमारे सामने पड़ता था, वह अँधेरा था। आधीरात्रि को पृथ्वी के किसी निर्जन स्थान में जैसी शान्ति और गम्भीरता दिखलाई पड़ती है, वैसी ही गम्भीरता वहाँ थी। मैंने सोचा—कदाचित् शुक्र की दशा भी चन्द्रमा की तरह है। जैसे चन्द्रमा का एक अंश सदा प्रकाशित रहता है, और दूसरा अंश सदा अंधकार में रहता है, वैसा ही यहाँ भी होता जान पड़ता है। परन्तु यह अवश्य था कि कुछ तारों के प्रकाश के कारण वहाँ इतना अन्धकार नहीं था। परन्तु जब ज्ञानशंकर ने कहा—“यह बात नहीं है। वास्तव में शनि अपनी कक्षा पर घूम जाता है। उसकी दशा चन्द्रमा के समान नहीं है,” तब मुझे आश्चर्य हुआ।

परन्तु एक बात जो अत्यन्त अद्भुत थी। शनि को घेरकर अनेक उग्रग्रह घूम रहे थे और उनमें से कई पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था। यद्यपि यह प्रकाश बहुत कम था, परन्तु फिर भी वे उस प्रकाश में चाँदी की तरह भलमलाते थे।

ज्ञानशंकर ने कहा—“लोग शनि को गाली देते हैं परन्तु सच तो

यह है कि यदि मुझे किसी एक ग्रह पर बसने के लिए कहा जाय और वहाँ जीते रहना सम्भव कर दिया जाय, तो मैं शनैश्चर को ही चुनूँगा।”

“क्यों?” मैंने जिज्ञासा की।

“यहाँ का दृश्य असाधारण है। इतने उपग्रहों का एक स्थान पर इकट्ठा हो जाना एक प्राकृतिक चमत्कार है। यदि शनि पर मनुष्य होंगे तो वह इन कई चन्द्रमाओं के उदय-अस्त का आनन्द एक ही अवसर पर ले लेते होंगे। हाँ, यदि मनुष्य हुए।” कुछ व्यंग्य से वह मुसकराया।

“परन्तु अभाग्य तो यह है कि मनुष्य नहीं है” मैंने कहा—“और उससे भी बड़ा अभाग्य कौन होगा जो यहाँ आकर भी यह चमत्कार नहीं देखेगा।”

ज्ञानशंकर मुसकराया।

उसने कहा—“हमारे पास समय कहाँ है। अभी सारी सृष्टि पड़ी है। हम अभी इतना ही चल सके हैं जितना एक छोटी-सी चीटी एक दिन में पृथ्वी पर चल सकेगी। अभी इतना अवकाश नहीं। हाँ, किसी दूसरी यात्रा में यह सम्भव है।”

‘दूसरी यात्रा में!’ मैं उसके इस असम्भव आदर्शवाद पर मुसकराया पहले इस यात्रा में ही प्राण बच जायें, तो बहुत है।

ज्ञानशंकर चक्र घुमाकर यान की गति बढ़ा रहा था। वह चुप था।

“अब उरण, वरुण और कुबेर!” मैंने कहा।

ज्ञानशंकर ने कहा—“शोक, इस यात्रा में हम इन तीनों ग्रहों को नहीं पा सकेंगे। वह हमारी यात्रा से इतने हटे हैं कि हम उन तक किसी तरह पहुँच नहीं सकते। हाँ, वरुण कदाचित् हमें लौटते समय मिले!”

“लौटते समय!”

उसने कहा—“इसमें आश्चर्य क्या है ? इसी तरह चक्कर रहने पर ही तो पहुँचेंगे पृथ्वी तक । कदाचित् यही ग्रह उस समय हमें फिर मिलें ।”

उसने यान की गति और तेज कर दी । अब हम जिस गति से चल रहे थे, उसकी कल्पना करना भी कठिन था । परन्तु आश्चर्य का विषय था कि हमारे चारों ओर के तारे हमें अब भी स्थिर दिखलाई पड़ते थे ।

थोड़ी देर में ज्ञानशंकर ने कहा—“हम सौर्यचक्र से निकल गये । अब हम अपनी परिचित नीहारिका में हैं । वही आकाशगंगावाली नीहारिका । आगे चलकर हमें न जाने कितने सूर्यों के दर्शन होंगे जो कदाचित् इतने ही बड़े हैं जितना महाभारत के साधारण पात्रों में घटोत्कच था ।”

“क्या हम नीहारिका से बाहर शीघ्र ही पहुँच जायेंगे ?”

“नहीं, इसमें कई दिन लगेंगे” उसने कहा—“यह यात्रा लम्बी है, तुम विश्राम कर सकते हो । क्या यही कम है कि एक ही दिन में हम सौर्य-मंडल से बाहर निकल आये ।

मैंने आँख बन्द करके सोने की चेष्टा की ।

परन्तु यह क्या ?

मैंने अनुभव किया, हमारा यान प्रकाश की तीव्र गति से नाँच-गिर रहा है या किसी विशेष दिशा में खिंचा जा रहा है । भयंकर उत्पात मेरे सामने का दर्पण बिलकुल स्वच्छ था, जैसे कुछ भी नहीं हो रहा हो । तब क्या हम सचमुच गिर रहे हैं ? मैंने ज्ञानशंकर की ओर देखा, वह अर्द्धविमूर्च्छित अवस्था में एक बड़े गोले को घुमा रहा था । यह गोला उसके सामने के चक्र पर जड़ा हुआ था । क्षण भर में एक भयानक दुर्घटना की बात मेरी समझ में आ गई । यान की मशीन बिगड़ गई है । किसी यंत्र ने काम करना छोड़ दिया है । अब मृत्यु और हममें कोई अन्तर नहीं । सहसा, एक झटका लगा और सारा यान

भनभना उठा। चक्र टूटकर गिरने लगे और भयंकर भनभनाहट ने हमें वधिर कर दिया। अब मृत्यु बहुत निकट है। पृथ्वी से करोड़ों मील ऊपर महाशून्य में सहारा कहाँ रक्खा है। मैं ज्ञानशंकर पर भल्ला उठा—वह तो यह चाह ही रहा था कि सृष्टि के केन्द्र को भी खोज डाले। चलो अच्छा हुआ। अब हम सृष्टि के केन्द्र में पहुँचे। आँखें मूंदकर मैंने अपने मन को ढीला छोड़ दिया। चाहे जो हो।

परन्तु फिर भयंकर भनभनाहट ! मैंने आँखें खोल दीं।

ज्ञानशंकर मुझे झकझोर रहा था।

“क्यों? क्या सोत थे? दिन को? जान पड़ता है, मुझे देखकर आकाश से गिर पड़े हो।”

“अरे, प्राण बचे ! तो, क्या यह आकाश की यात्रा दिवास्वप्नमात्र थी !

“हाँ, गिरा तो सचमुच आकाश से ही और तुम्हारे साथ ! वाह !”

ज्ञानशंकर ने मुसकराकर कहा—“नहीं जानता, किस लोक का रस ल्ले रहे थे। भाभी बैठके का दरवाजा नहीं खोल देती तो मैं कुंडी बजाता ही रहता और तुम भला क्यों जगते ?”

मेरी पत्नी मुसकराते हुए मुझे देखती हुई भीतर चली गई। तब यह सब स्वप्न ही रहा क्योंकि ऐसा कोई प्राणी हमारे यान में कब था।

मैंने अपनी गोद से वेल्स की ‘दि फ्रस्ट मेन इन दी मून’ उठाकर ज्ञानशंकर पर फेंक दी। किंचित् क्रोध का नाट्य करते हुए कहा—“तुम्हारे खगोल-शास्त्र के व्याख्यानों ने और इस वेल्स ने आज मेरे प्राण ले लिये थे। यान तो टूट ही गया था। यदि तुम ठीक समय पर न आ जाते तो मैं सृष्टि के केन्द्र में जा पड़ा होता।”

तुरन्त ज्ञानशंकर के परिचित अट्टहास से कमरा गूँज उठा।















